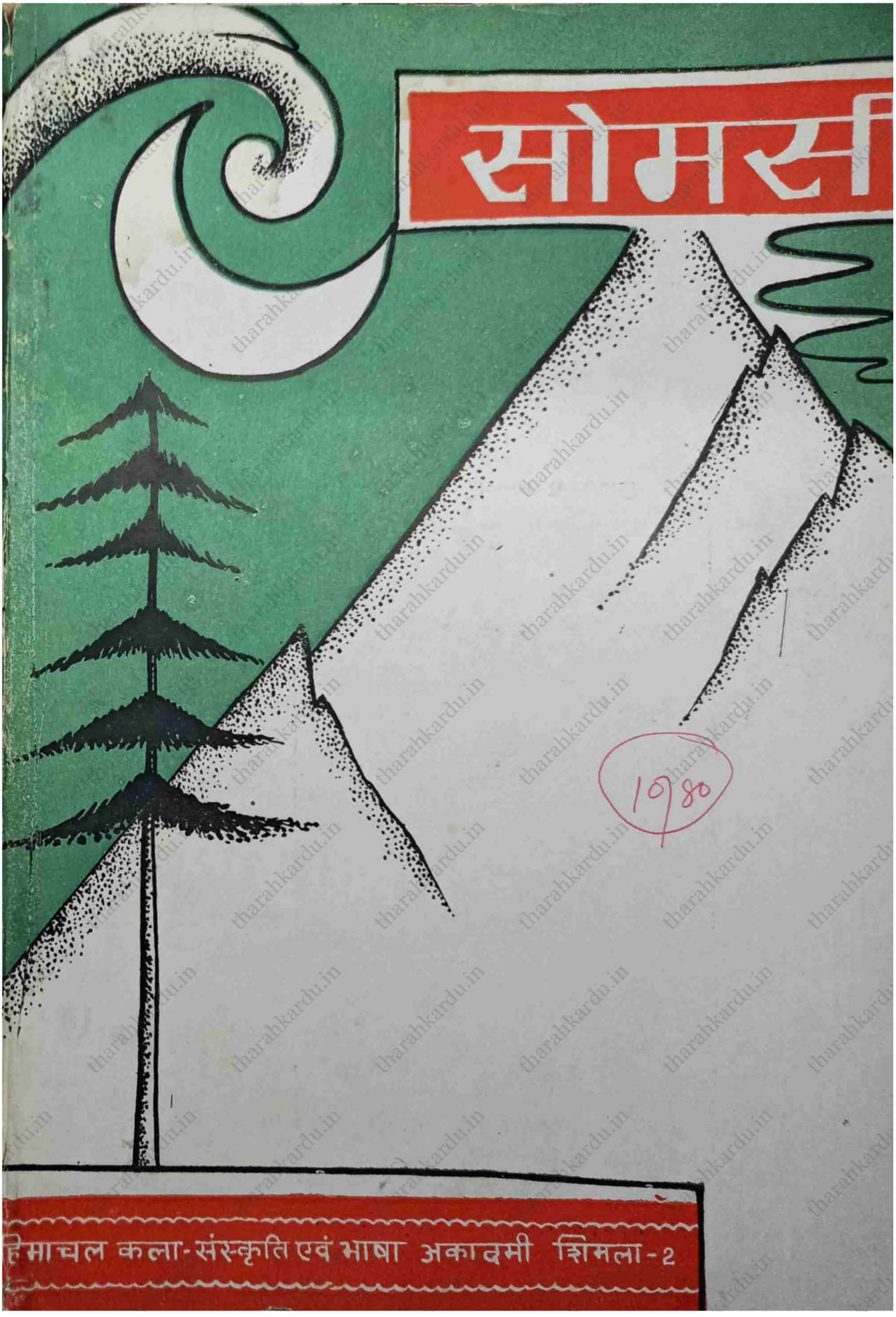

tharahkardu.in

दुल्हन का शृंगार—अमृता शेरगिल

पहाड़ी महिलाएं मंगल पर्व के समय—अमृता शेरगिल

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 6 | अक्तूबर, 1980 | अंक 4

मुख्य सम्पादक :
अध्यक्ष अकादमी
शिव कुमार उपमन्यु

सम्पादक :
मौलू राम ठाकुर

सहयोगी :
सरोज सांख्यायन

आवरण :
ओम प्रकाश

२४

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य ।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, पीच ब्लाज्म काटेज,
शिमला-171002

tharahkardu.in

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय		*(i)*
2.	अमृता शेरगिल—व्यक्तित्व एवं कृतित्व	–श्री किशोरी लाल वैद्य	1
3.	बारह-मासा लोक-गीत—एक अध्ययन	–डॉ० पद्म नाभ गौतम	10
4.	कांगड़ा के कवि कांशी राम की राम गीता	–डॉ० श्रीकान्त 'प्रत्यूष' गुलेरी	16
5.	हिमाचल लोक-साहित्य एवं ग्राम्य गीत	–डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी	19
6.	कुलुई में रामायण	–श्रीमती कमलेश कुमारी ठाकुर	22
7.	बिलासपुर में प्रचलित लोकोक्तियों का सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यांकन	–डॉ० श्रीराम शर्मा	27
8.	दशी	–श्री पन्ना लाल जोगटा	35
9.	नाहन में महाकाली का पदार्पण	–श्री मदन मोहन 'कमल'	41
10.	महासू परिवार में देवता बनाड़	–श्री ध्यान सिंह भागटा	44
11.	लोक-नाट्य भगत	–श्री ओंकार लाल भारद्वाज 'चंगर'	48
12.	रेणुकोद्धार	–श्री भुवनेश्वर सुमन	52
13.	नाग और गरुड़	–श्री सन्त राम वत्स्य	64
14.	बनजार के लोक-गीतों का समीक्षात्मक अध्ययन	–श्री बाल कृष्ण ठाकुर	75
15.	महासू—एक परिचय	–श्रीमती भाग्यवती शर्मा	80
16.	महासुई उपभाषा के क्रिया-पदों का संरचनात्मक अध्ययन	–श्री हरिराम जसटा	85
17.	कुल्लू का उत्सव—दरपौण काहिका	–श्री सुदर्शन वशिष्ट	93
18.	पुस्तक संमीक्षा—'वत्सला' व 'तरतीब'	–श्री तुलसी 'रमण' एवम् श्री आजाद गुलाटी	96

★●★

सम्पादकीय

भाषा और केवल भाषा ही मनुष्य का वास्तविक व्यक्तित्व है। सामने खड़े किसी व्यक्ति को कितनी ही सावधानी से देखा जाए उसका सही ज्ञान तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक वह वाणी का प्रयोग करके आत्म-अभिव्यक्ति नहीं करता। व्यक्ति का शारीरिक सौन्दर्य उसे निर्जीव मूर्ति से अधिक महत्व प्रदान नहीं कर सकता। व्यक्ति-विशेष के भाव, विचार, ज्ञान, प्रज्ञान चाहे कितने ही सबल, व्यापक और सुदृढ़ हों, परन्तु यदि उसमें भाषा का अभाव है या शब्दों की कमी है तो उसकी प्रतिभा अवरूद्ध हो जाती है। शब्दों के बिना विचारों की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। और शब्दों का उपयुक्त चयन व्यक्ति की अभिव्यक्ति को स्पष्ट और सुव्यवस्थित बनाती है। मूलतः भाषा समाज में लोगों के बीच आपस में भावों और विचारों के आदान-प्रदान का एक मात्र साधन है। परन्तु मेरी बात आप समझ जाते हैं, यहीं तक भाषा का कार्य समाप्त नहीं होता। यदि केवल भावों के आदान-प्रदान और समझने-समझाने की बात होती तो हर व्यक्ति की भाषा और हर भाषा का एक ही प्रभावी रूप होता है। परन्तु भाषा इसमें कहीं अधिक प्रभावी रूप रखती है। एक ही बात को कई तरह और कई शब्दों से अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसी 'कई तरह' में भाषा का मूल गुण निहित है। भाषा में सामान्य आदान-प्रदान से ऊपर उठ कर मस्तिष्क को उभारने और मन को जीतने की शक्ति भी विद्यमान है। मानव स्वभाव से चिन्तनशील है। चिन्तन से उसका ज्ञान बढ़ता है, परन्तु ज्ञान का प्रकाशन केवल भाषा से हो सकता है। यदि भाषा नहीं है तो मानव का ज्ञान प्रकाश में नहीं आ सकता। यदि ज्ञान प्रकाश में नहीं आता तो उसकी चिन्तन शक्ति कुण्ठित हो जाती है। एक ही मंच पर एक ही विषय को अनेक वक्ता अभिव्यक्त करते हैं। परन्तु श्रोताओं को वही अपने साथ बहा ले जाता है जिसे भाषा पर नियन्त्रण है, शब्दों के चयन में कुशलता है। ऐसी कुशलता निश्चय ही उस भाषा में अधिक सहज, सरल और सुबोध रूप से हो सकती है जो व्यक्ति-विशेष ने मां की गोद से सीखी हो।

किसी भी मातृ-भाषा को उस समाज के लिए अपूर्ण या अपर्याप्त नहीं कहा जा सकता। परन्तु कोई भी भाषा अपने आप में प्रगतिशील समाज के अन्दर पूर्ण भी नहीं है, चाहे वह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी है या मलाणा के छोटे से जनपद का कनाशी बोली है। जिस प्रकार विज्ञान और उद्योग के बढ़ते चरणों और आविष्कारों से अत्यन्त सभ्य समाज की भाषा अंग्रेजी में अब भी नये शब्द जुड़ रहे हैं, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा में उस समाज की प्रगति और उन्नति के साथ शब्दों का आगमन और भाषा का विकास स्वतः हो जाता है। शब्दों को ठूंसा नहीं जाता, भाषा को बाजू से पकड़ कर खींचा नहीं जाता। शब्दों का निर्माण और भाषा का विकास समाज के विकास के साथ आत्मसात है, स्वतः-स्फुरित है। भाषा कभी स्थैतिक, स्थिर और गतिहीन नहीं है। वह हमेशा विकासशील और गतिशील है। उसका विकास स्वतन्त्र होता है। उसके लिए नियम-विधान बनाने जरूरी नहीं हैं। न ऐसा सम्भव हो सकता है।

भाषा और बोली में कोई अन्तर नहीं है। दोनों मानव के भावों की अभिव्यक्ति के साधन हैं। दोनों शब्द वाणी के द्योतक हैं। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि बोली का स्थान सीमित है और भाषा का विस्तृत। किसी सीमित क्षेत्र की भाषा को जिस में बोलने वालों का उच्चारण लगभग एक सा हो, बोली कहा जा सकता है। परन्तु उच्चारण सर्वदा व्यक्ति-भेदक है। हर व्यक्ति का अपना स्वतन्त्र उच्चारण है। इससे हर व्यक्ति की अपनी बोली हुई। इस दृष्टि से बोली के भी भेद किए जाते रहे हैं जिन्हें उप-बोली कहा जाता है। इस तरह किसी स्थान-विशेष की बोली जहां राज्य राजधानी हो, अन्य बोलियों से विशिष्ट महत्व प्राप्त करके अन्य से ऊंचा स्थान लेकर भाषा कहला सकती है। यह भी कहा जा सकता है कि किसी सीमित क्षेत्र की बोल-चाल को जो ध्वनि, रूप, वाक्य-गठन, अर्थ, शब्द-समूह तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से अन्य क्षेत्रीय रूप से भिन्न हो बोली कहा जा सकता है। और इस तरह की अनेक बोलियों के समूह को भाषा कहा जा सकता है। इस दृष्टि से बोली का स्थान मौलिक और वास्तविक है और भाषा का स्थान गौण और कृत्रिम है। इस दृष्टि से भाषा का कोई मौलिक स्थान या रूप नहीं है। यह रूप और स्थान तो बोली को प्राप्त है। अनेक बोलियों ने जिस सांझे रूप को आपसी आदान-प्रदान के लिए स्वीकार किया वह रूप भाषा है। इससे यह धारणा स्पष्ट हो जाती है कि राष्ट्रीय आदान-प्रदान की सुविधा के लिए जिस सांझे अभिव्यक्ति रूप को सरकारी तौर पर स्वीकृत किया जाए वह भाषा है, शेष बोलियां। तब अंग्रेजी, हिन्दी, रूसी, अरबी, चीनी आदि विश्व की सभी भाषाएं आरम्भ में बोली रही होंगी।

विस्तार की दृष्टि से अनेक बोलियों का सांझा रूप सर्वसम्मत रूप नहीं हो सकता। अनेक बोलियों में कुछ अंश सांझे हो सकते हैं परन्तु कोई समस्त रूप सांझा नहीं हो सकता। इसलिए सांझे रूप से अभिप्राय: उनमें से एक प्रमुख बोली से है। सब में जिसका रूप प्रमुख है वह भाषा कहलाता है। इसे केंद्रीय रूप कहा जा सकता है। अतः अनेक बोलियों का केंद्रीय रूप उन बोलियों की भाषा है। खड़ी बोली, अवधी, ब्रज, भोजपुरी आदि के केंद्रीय रूप को हिन्दी कह कर हम उसे भाषा रूप में मानते हैं। ऐसा रूप अपनी अन्तर्गत सभी बोलियों से कुछ अंशों में भिन्न तथा अधिकांश में समान होता है।

प्राय: एक बोली कोई मान्यता प्राप्त करने पर भाषा बन जाती है। उसको मान्यता में उसके साहित्य का प्रमुख स्थान है। अतः जब किसी बोली में साहित्य सृजन होने लगता है तो उसका स्वरूप निखर कर सामने आता है और वह भाषा के रूप में स्वीकारी जाती है। इस तरह भाषा अभिव्यक्ति का वह रूप है जिसमें साहित्य सृजन हुआ हो और बोली अभिव्यक्ति का वह रूप है जिसमें साहित्य सृजन नहीं हुआ है परन्तु जो समाज में आदान-प्रदान के लिए फिर भी सफल और व्यापक साधन है। इस प्रकार साहित्यिक, राजनैतिक और धार्मिक कारणों से बोली प्राय: भाषा बन जाती है यद्यपि मूल में दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

ऊपर के इन तथ्यों के अन्तर्गत ही पहाड़ी भाषा और उसके स्वरूप को देखा जाना चाहिए।

—एम० आर० ठाकुर

अमृता शेरगिल–व्यक्तित्व एवं कृतित्व

—किशोरीलाल वैद्य

जनवरी ३०, १९१३ से लेकर दिसम्बर ५, १९४१ लगभग २९ वर्ष का छोटा सा अन्तराल अमृता शेरगिल का तमाम जीवन। इस छोटे से जीवन में उसने जो अन्तर्दृष्टि की गहराई, व्यापक अनुभूति और सृजनशील कलात्मकता अर्जित की, वह आज भी अपनी समता नहीं रखती। उसके चित्र हैं—भारत माता, दुल्हन का श्रृंगार, पहाड़ी, महिलाएं, ग्राम्य श्रृंगार, केले बेचने वाली, किस्सागोई, निम्बू बेचने वाले युवक, दो औरतें, रूप-गर्विता, आराम करती हुई महिला, तीन बहिनें, गांव का एक दृश्य, ब्रह्मचारी, हल्दी पीसती ग्रामीण महिलाएं, दुल्हन, हस्ति-स्नान, वादक आदि साधारण जीवन के असाधारण चित्र। और इन चित्रों में कितना कुछ है—अपने समकालीन युग की समस्त चेतना। यूरोप में शिक्षित इस कलाकार का अपनी मिट्टी से अद्भुत लगाव रहा।

अमृता शेरगिल का जन्म बुदापेस्त (हंगरी की राजधानी) में हुआ था। पिता एक भारतीय सिक्ख जागीरदार थे—सरदार उमरावसिंह गिल और मां थी एक सम्भ्रान्त हंगेरियन महिला–श्रीमती अन्तोनेत्ति। अमृता की बौद्धिक क्षमता उसे बपौती के रूप में मिली लगती है। स० उमरावसिंह गिल की दर्शन और काव्य में गहरी रुचि रही। संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी चारों भाषाओं के अच्छे ज्ञाता ही नहीं, उनमें कवितादि भी लिखते थे। मां एक अत्यन्त परिष्कृत सुसंस्कृत और सम्वेदनशील महिला थी जो कलाओं के प्रति सर्वथा सजग रही, वे आपेरा की कुशल गायिका तथा ख्यातिप्राप्त संगीतज्ञ तो थी हीं उन्हें पांच छः भाषाओं पर भी अधिकार प्राप्त था। अमृता की रुचि-शुचि और संस्कार उसे एक सम्भ्रान्त परिवार से विरासत में मिले।

१९१४-१९१९ तक यूरोप प्रथम महायुद्ध में बुरी तरह जकड़ा पड़ा था और उसके बाद भी अनेक वर्षों तक क्या विजयी, क्या पराजित बुरी तरह से टूटे हुए थे। १९२१ में ही शेरगिल परिवार के लिए भारत आना सम्भव हुआ और यहां वे शिमला में रहने लगे। अमृता की बौद्धिक अपेक्षाओं के प्रति मां बाप जागरूक थे और यह उनके अपने परिवार में ही सम्भव था कि अमृता का बौद्धिक विकास एक विशिष्ट ढंग से हो सका। कला के प्रति अमृता का रुझान देखते हुए मां ने उसके लिए एक अंग्रेज अध्यापक नियुक्त किया जिसने बालिका की विशिष्ट क्षमताओं को पहचानते हुए परामर्श दिया कि उसे चित्रकला में यथापेक्षित प्रशिक्षण के लिए यूरोप ले जाया जाए। मां सुझाव स्वीकार कर उसे १९२४ में इटली ले गई और फलोरेंश की एक कलाशाला में प्रवेश लिया। लेकिन यहां अनुशासन की कठोरता कलाकार मन को रास न आई। श्रीमती अन्तोनेत्ति ने उसे वहां से एक ही सत्र के पूरा होने पर हटा लिया और वे दोनों भारत लौट आईं। यह भारत की मिट्टी और

उसके लोगों का ही आकर्षण था, जो उसकी कलात्मक अनुभूति को सहेजता रहा, उसकी कूची को आवश्यक प्रेरणा देता रहा और उसके मस्तिष्क को आकाशी उड़ान। यहां की वनस्थली और यहां के लोगों को देखकर उसके रंग और कूची मचल उठते। अमृता बराबर चित्र बनाती गई और स्वतः उसकी शैली में निखार आता गया।

अमृता की कला को कुछ कर गुजरना था। श्रीमती शेरगिल १९२९ में सोलह वर्षीय अमृता को पेरिस ले गई। और वहां अमृता इकोल नामक एक संस्थान में कला का अध्ययन करने लगी। इसी कलाशाला में लूसियां सीमा के आचार्यत्व में अमृता को कला के प्रति अपनी जन्मजात अभिरुचि को विकसित करने का भरपूर मौका मिला। अमृता १९२९ से १९३१ तक वहां रही और वह इस कलाशाला की सबसे अधिक प्रतिभा सम्पन्न छात्रा समझी गई। कलाशाला में हर वर्ष एक प्रदर्शनी का आयोजन होता और अमृता के चित्र लगातार तीन वर्ष तक सर्वश्रेष्ठ घोषित किए जाते रहे। अमृता में कलापेक्षित रुचि तो थी ही, यहां उसने आवश्यक प्रशिक्षण पाकर अपनी तकनीक को निखारा व सम्पन्न बनाया। १९३२ में ग्रांद सालों में एक चित्र प्रदर्शित किया जिसका शीर्षक था "स्त्री का धड़"। कुची और रंगों के अन्तर्गत यह चित्र किन्हीं परम्पराओं को चुनौती देता हुआ एक साहसिक प्रयास था जिसकी ओर पेरिस के सुप्रसिद्ध कला-समीक्षकों का ध्यान गया और इस चित्र का जिक्र कला सम्बन्धी एक प्रख्यात पत्र, 'जर्नल देस आर्टस' में भी रहा। इससे अगले वर्ष 'नवयुवतियां' शीर्षक चित्र अमृता ने प्रस्तुत किया और यह चित्र वर्ष का सर्वश्रेष्ठ चित्र घोषित किया गया। इससे अमृता ने कला-जगत में अपने लिए एक सम्मानपूर्ण स्थान बना लिया। उन्हें ग्रांद सालों की सदस्यता मिली और यह सम्मान एक बीस वर्षीय कलाकार के लिए बड़ी उपलब्धि थी। इतनी छोटी सी अवस्था में इस कला संस्था की सदस्यता के लिए मनीनीत होना अभूतपूर्व बात थी और दूसरी बात यह थी कि वही पहली भारतीय थीं जिसे यह सम्मान मिला था। १९३४ में उनके लिए एक अन्य अवसर आया। संसार की सबसे बड़ी कला प्रदर्शनी, 'सलों द त्वील' में उन्होंने अपनी प्रविष्टी, 'सेवों के साथ एक युवक' प्रेषित की। यह चित्र भी बहुप्रशंसित रहा। कलाकार में सृजन सम्बन्धी एक असन्तोष रहता है जो उसे अपने अन्वेषण में आगे धकेलता है। कुछ ऐसी ही बात अमृता शेरगिल में भी देखने में आती है। हर उपलब्धि के बाद वह नई दिशा ढूंढना चाहती रही और अपने रचना-विधान को भी अपने कथ्य के अनुकूल सक्षम व सशक्त रखना चाहती थी। पेरिस में उसने अपना स्वतन्त्र स्टूडियो स्थापित किया और बराबर चाहा कि उसके इस स्टूडियो के वातायन से हर कला का प्रवेश एक स्वच्छ हवा के रूप में हो ताकि उसकी सृजन प्रक्रिया स्वस्थ रहे। यहां उसके कला-विधान में यदि कुछ परिवर्नन नजर आते हैं। यहीं उसकी कला-दृष्टि तथा शैली पर क्रमशः गोगां और सेज़ां के प्रभाव पड़े। ये प्रभाव उसे अपने स्वभाव और रुचि के अनुकूल प्रतीत हुए। सेज़ां के प्रति आकर्षण का कारण उसकी तकनीकों में सर्वथा प्रयोगों की सम्भावना थी जो किसी नये विषय, नये कथ्य के अनुकूल शैली अथवा तकनीक को पुराना नहीं देख सकता था। गोगां से प्रभावित होने का कारण भी आसानी से समझ आता है। गोगां अन्तर्मुखी कलाकार था; एक गहरी उदासी उसकी जीवन-दृष्टि में निहित थी, सम्वेदना और सहानुभूति उसके चिन्तन की अपेक्षा थी। गोगां की कृतियों का अमृता के लिए इन्हीं कारणों से आकर्षण रहा। अपनी धरती का वह रहस्यमयी सौन्दर्य, अपने भारत की वह अन्तर्मुखी चेतना, उसके लोगों की कातर, असहाय दृष्टि कितना कुछ था जिसे गोगां के चित्रों ने उसे स्मृतियों के रूप में लौटाया। यह महान

कला का सबसे प्रमुख लक्षण समझा जा सकता है जो दर्शक को एक अद्‌भुत आकर्षण होने पर भी निर्लिप्त रखे, उसे उसकी खोई हुई चेतना दे और एक सुसुप्त अवस्था में से जागरण दे। सेज़ां और गोगां की देन अमृता को मौलिकता और आत्म-दर्शन देने में सार्थक रही। उसने अपेक्षित रूप से अनुप्राणित होकर एक मौलिक दृष्टि का परिचय दिया। वह किन्हीं आकर्षणों में खो नहीं गई, किन्हीं प्रभावों में दब कर नहीं रह गई। अब वह भारत लौटना चाहती थी, अपनी धरती और अपने लोगों की स्मृतियां उसे भारत लौटने के लिए विवश करने लगीं। उसे लगा कि उसकी कला भारत लौटने पर ही मुखर होगी सृजन की अनेक सम्भावनाएं दिखाई दीं।

१६३४ के उत्तरार्द्ध में अमृता भारत लौटीं। पंजाब के गांवों और आस-पास के इलाकों में घूमने पर उसे दरिद्रतापूर्ण लेकिन सहज मानवीय ग्रामीण भारत के दर्शन हुए और उसने लिखा, "भारत भूमि पर पांव रखने पर मेरी कला में एक परिवर्तन आया जो केवल उसके विषय और तत्व में ही नहीं था लेकिन तकनीकी अभिव्यक्ति में भी, जो मूलत: भारतीय बन गई थी। तब मैंने अपने कलात्मक लक्ष्य को पहचाना—भारतीयों के और विशेषत: निर्धन हिन्दुस्तानियों के जीवन को चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करना, असीम सहनशीलता और धैर्य की उन मूक प्रतिमाओं को चित्रित करना, उन कोणकार सांवले शरीरों का अंकन करना जो अपनी कुरूपता में भी अद्‌भुत रूप से सुन्दर हैं और चित्रफलक पर वह प्रभाव प्रत्यांकित करना जो मुझ पर उनकी उदास नजरों ने डाला है।" शरद कालीन भारत का वह चेहरा उसने किस बखूबी पहचाना: "भारत में शरद का दृश्य कितना सुना फिर भी अद्‌भुत और सुन्दर—चमकती पीली-स्लेटी जमीन पर बनी अन्तहीन पगडण्डियां, काले शरीर उदास चेहरों से युक्त दुबले-पतले आदमी और औरतें चुपचाप चलते हुए लगभग छायानुकृतियां सी मालूम देती हैं और वे ऐसे विषाद में ग्रस्त रहते हैं जो अवर्णनीय है।"

१६३४ में भारत लौटने पर अमृता ने शिमला को अपना आवास स्थान बनाया। वहां समरहिल के स्थान पर उन्होंने अपना स्टूडियो निर्मित किया और यह मकान आज भी 'स्टूडियो' के नाम से जाना जाता है यद्यपि उनकी कला से मकान का अब कोई रिश्ता-नाता नहीं रह गया है। अब वह भारत का अन्दरूनी जायजा लेना चाहती थी जो वह वास्तव में है। अपने देश की अत्यन्त निर्धनता देखकर वह विचलित हुई लेकिन उसे लगा कि शारीरिक और आर्थिक दृष्टि से इतने विपन्न होने पर भी इन लोगों के भीतर एक संवेदनशील मानवता वास करती है और वह उसे उकेरने में बराबर प्रयत्नशील रही।

भारत तथा अपने लोगों के सम्बन्ध में वह पहले कितनी अनभिज्ञ रहीं, इस पर उन्होंने लिखा, "यूरोप जाने से पूर्व एक छोटी लड़की होने से नाते में इतनी अन्तर्मुखी प्रकृति की थी कि मैंने कभी अपने आस पास, अपने से बाहर सचमुच कुछ देखा परखा नहीं था। उन दिनों मैं बिल्कुल कल्पना के सहारे काम करती रही वास्तयिकता के बजाय तस्वीरों में समायी रहती थी। मैंने भारत को पाश्चात्य कला के उन नमूनों के माध्यम से ही कुछ समझा था जो स्थानीय प्रदर्शनी में रखे रहते थे।"

अपने स्टूडियो में कार्य करने से पूर्व उसने ग्रामीण भारत को अपनी नजरों से देखा और उसके अन्तर्मन में उसकी गरीबी, मजबूरी और लाचारी तैरती रही। उसकी आंखों में भारत की सामान्य प्रकृति थी, यहां की चलती-फिरती बैल-गाड़ियां थीं, छोटे-छोटे गांव थे, उन गांवों

की घास-फूस से बनी झोंपड़ियां थीं, बेचारे मामूली ग्रामीण थे और उनके दुबले-पतले बच्चे थे। भारत की इसी वास्तविकता को वह आत्मीयता और कलापेक्षित सच्चाई से चित्रित करती रही।

१९३६ में अमृता ने भारतीय चित्रकला की अनन्य थाती, 'अजन्ता' के दर्शन किए जिसे देख कर वह अभिभूत रही। उसी के शब्दों में "अजन्ता विशुद्ध चित्रकला का सचमुच ही एक उत्तम और शाश्वत दृष्टान्त है।" सम्पूर्ण भारतीय कला थाती के प्रति अपनी रुचि प्रकट करते हुए उसने लिखा है, "कम से कम एक कारण से मुझे प्रसन्नता है कि मैंने कला की शिक्षा योरुप में पाई। उसने ही मुझे अवसर दिया है कि मैं अजन्ता, मुगल और राजपूत चित्रकारी को समझ सकूं, और उन्हें पसन्द कर सकूं—तुच्छ और सतही कारणों से नहीं, न इस लिए कि वे इतिवृत्तात्मक हैं, बल्कि सही कारणों से। होता यह है कि अधिसंख्य भारतीय उनके समझने का ढोंग तो करते हैं लेकिन वास्तव में वह गलत ढंग से समझी जाती है।"

अमृता शेरगिल के उक्त विचारों से कलाकार वर्ग में एक तहलका मच गया था। हर बात के लिए जो भारतीय संस्कृति का दम भरते हैं और कला के बौद्धिक पक्ष की ओर जिन की आंखें नहीं खुलतीं, जिन के लिए श्रेष्ठता की कसौटी केवल यह है कि अमुक वस्तु किन अर्थों में अथवा किस हद तक भारतीय है—ऐसे लोगों के विवेक पर अमृता के उक्त शब्दों ने करारी चोट की थी। उसके अहम् को आघात पहुंचा था लेकिन कलाकार ने इमानदारी से अपनी कला दृष्टि को अभिव्यक्ति दी थी और कहना न होगा कि आज अमृता शेरगिल का नाम भारतीय चित्रकला में ही नहीं, संसार भर की चित्रकला के इतिहास में बड़े गर्व से लिया जाता है।

भारत की दीन-हीन अवस्था का सही-सही सम्प्रेक्षण नहीं हो पाता यदि स्वयं अमृता उसे अपनी आंखों न देख लेतीं। इस लिए जहां वह अजन्ता के दर्शन कर उससे अत्यधिक प्रभावित हुईं वहां जन-साधारण की दरिद्रता ने उसे ऐसी अनुभूति और सम्वेदना दी जिस से अनुप्राणित हो उसकी कला ने महान चित्रों की सर्जना की। भारत माता (१९३५) शीर्षक चित्र में उसका देश-प्रेम, सम्वेदना, सहानुभूति ही प्रतिफलित नहीं हुई बल्कि तत्कालीन व्यवस्था के प्रति विद्रोह और ब्रिटिश काल के भारत की दुर्गति, रुग्णता, असहायता और विवशता का चित्रण भी है। 'भारत माता' में अत्यन्त कातर दृष्टि ली हुई तीन आकृतियां हैं—एक अति साधारण असहाय मां है उसकी गोद में उसका बच्चा और साथ में उसकी लड़की बैठी है। दोनों बच्चे रुग्णावस्था में दिखाई दे रहे हैं, बालक का बेडौल शरीर—बड़ा सा सिर और छोटी सी काया—अजीब सी करुणा पैदा करता है। वे आकृतियां मूक होती हुई भी अपने शोषण के विरुद्ध अद्भुत अभिव्यक्ति लिए हुई हैं। उनके मूक चेहरों पर खुली आंखें कितना कुछ कह जाती हैं। इन शोषित और दमित आकृतियों का चित्रण ही अपनी समकालीन व्यवस्था के प्रति उनके मन में निहित विद्रोह को वाणी देता है। अमृता का वही स्वर है जो उसे अन्य कलाकारों से भिन्न करता है। ऐसा मुखर, कलात्मक और यथार्थवादी चित्रण अन्य किसी कलाकार के फलक में नहीं उभरा, भले ही वह अपनी संस्कृति का सब से बड़ा पुजारी क्यों न हो। और तभी लगता है कि भारतीय संस्कृति की दुहाई देना तो सहज है, उसका ढोंग भी लोग आसानी से कर सकते हैं लेकिन ऐसी कला का अपनी धरती से कोई वास्तविक रिश्ता नहीं, जो उसके दुख-दर्द को वाणी नहीं देती। इसके विपरीत अमृता शेरगिल की सबसे बड़ी

बात है कि उसके चित्र जहां समकालीन चेतना लिए हुए हैं अपनी धरती का सब से मुखर, सशक्त स्वर है, उनमें अपने लोगों की विवशता, पीड़ा, दैन्य, हीनता का यथार्थवादी चित्रण है, वहां उनका नैसर्गिक सौन्दर्य कभी भी कलाकार की दृष्टि से ओझल नहीं हुआ और यह नैसर्गिक सौन्दर्य उसके प्रकृति-चित्रण तथा सम्वेदनापूर्ण आकृतियों के चित्र आलेखन में बराबर देखा जा सकता है। ये आकृतियां जीवन से कटी हुई नजर नहीं आतीं लेकिन वे उसमें निहित विषाद को रेखांकित करती हैं। अपने सामान्य देशवासियों की जो जीर्ण-शीर्ण अवस्था रही है, वही अमृता के चिन्तन का केन्द्रबिन्दु बन गया लगता है। यहां उसका देश-प्रेम एक व्यापक परिधि में देखा जा सकता है, वह आन्धी राष्ट्रीयता नहीं थी। लेकिन उसकी कला में उद्भूत विषय इस धरती के हैं, वे महज स्टूडियो की चार-दीवारी के भीतर कलाकार की कुण्ठित कल्पना को जन्म नहीं देते। उसकी कला में सामान्य जीवन का ही अत्यन्त मार्मिक उद्बोधन है।

१९३४-३५ में अमृता ने जो चित्र तैयार किए थे उन्हें शिमला फाइन आर्टस सोसाइटी द्वारा आयोजित प्रदर्शनी में रखा गया। बाद में दिल्ली, बम्बई, हैदराबाद, इलाहाबाद आदि स्थानों पर कहीं एकल तथा कहीं संयुक्त प्रदर्शनियों में अमृता की कलाकृतियां देखने में आईं।

१९३५ में अमृता की तूलिका से जिन चित्रों की सर्जना हुई, वे महत्वपूर्ण हैं। 'भारत माता' के अतिरिक्त उसने अपने समरहिल (शिमला) स्थित स्टूडियो में पर्वत-वासियों के दो चित्र बनाए। पर्वतीय जीवन के एक चित्र में दो पुरुष खड़े हैं और साथ में नीचे एक महिला बैठी है। पुरुषों की वेशभूषा में उनकी पगड़ी, चूड़ीदार पाजामा और तन से लिपटी चादर है। अमृता शेरगिल के सभी चित्रों में एक बात सामान्य है कि उनमें अंकित आकृतियों की नयनाभिव्यक्ति विशिष्ट है और ध्यान आकर्षित करती है। ये मूक आकृतियां अपनी आंखों की राह विभिन्न अवस्थाओं तथा भावों के सम्प्रेक्षण में अत्यन्त समर्थ नज़र आती हैं। इन दो चित्रों में अंकित पहाड़ी लोगों के चेहरे-मोहरे अपनी जीवनगत विशेषताएं लिए हुए हैं। वे अभावग्रस्त तथा पीड़ित हैं लेकिन उस दयनीयता को मूक रूप से सहने की उनकी स्वभावगत समर्थता भी कलाकार के चित्रांकन में परिलक्षित होती है। यहां भी वे विषादाछन्न चेहरे हैं। उनकी बाह्य असहाय अवस्था और आन्तरिक वेदना उनके चेहरों से प्रस्फुटित होती दिखाई पड़ती है लेकिन उनके इस विषाद ने उनकी खामोशी को गहराया है। पीड़ा और विषाद से युक्त ये आकृतियां दर्शक के मर्म को छूने में, उसकी अनुभूति को जगाने में अचूक हैं। अपनी मिट्टी और अपने लोगों का ऐसा चित्रण असामान्य है।

अमृता शेरगिल के इसी समय के चित्रों में जन-जीवन के ही परिचायक चित्रों में 'बैलगाड़ी' उल्लेखनीय है। एक अन्य बहुप्रशंसित चित्र है–'तीन बहनें'। यह तैल चित्र १९३६ ई० में बम्बई फाइन आर्टस सोसाइटी द्वारा आयोजित कला प्रदर्शनी में पुरस्कृत हो चुका है। इस चित्र के लिए अमृता को तैलचित्रों में सर्वश्रेष्ठ घोषित होने पर स्वर्णपदक मिला था। इसी काल में अमृता ने दो रूपचित्र भी बनाए थे–एक अपने पिता स० उमरावसिंह गिल का और दूसरा अपना। अमृता शेरगिल के कुछ एक आत्म-चित्र (सेल्फ पोर्ट्रेट) देखने में आते हैं। 'एक चित्र में उनके रूप सौंदर्य और चारित्रिक दृढ़ता परिलक्षित होती है। एक अन्य चित्र में उनके सुगठित, अर्द्धनग्न शरीर व रूप-सौंदर्य के साथ सहज-निश्छल और उन्मुक्त मुस्कान आकर्षक और भली लगती है। एक और आत्म-रूपचित्र है जिसमें सम्भवत: स्नान के बाद वे अपने घने और लम्बे बाल सुखाती हुई सी

लगती है। अपनी निर्वसना आकृति में आत्म चेतना का भाव मुखर हुआ है। अमृता शेरगिल का अपना ही एक अन्य चित्र है जिसमें वे अलगाव की सी स्थिति में बैठी हुई तन्मयता से कुछ निहार रही है। आंखें थोड़ी सी झुकी हुई कहीं केन्द्रित सी हुई और शरीर ढीला सा, अव्यस्तता-सी स्थिति में देखा जा सकता है। यह चेहरा आत्म विस्मृत सा लगता है। यह चेहरा उस स्थिति के विपरीत है जिसमें स्वयं कलाकार स्लीवलैस कमीज पहने रूप सौंदर्य के साथ यौवनयुक्त सहज गर्व भी लिए हुए है। अमृता शेरगिल के ये विभिन्न चित्र उसकी मनःस्थिति के द्योतक हैं लेकिन सभी में अपनी आयु के अनुकूल रूप, सौंदर्य, गर्व और सहजता प्रस्फुटित हुई हैं। उसके दो आत्म रूपचित्रों में वह अपनी नग्नता लिए अंकित हुई है जो सम्भवतः स्नानोपरान्त के चित्र हैं। इन अर्द्ध-नग्न आकृतियों में नारी सौंदर्य के मनोहारी चित्रण के साथ-साथ नारी सुलभ शालीनता और श्लीलता के दर्शन भी होते हैं और यहीं हम उसकी कलागत विशिष्टता को बिना किसी संकोच के सराहने की स्थिति में भी हैं। असल में अमृता शेरगिल के चित्रों से सहज मानवीय सौन्दर्य कभी भी तिरोहित नहीं हुआ, भले ही ये चित्र उसके समकालीन सामान्य जीवन का अंकन लिए हुए हों अथवा उसका अपना। अमृता शेरगिल का आत्म-चित्र जिसमें संभवतः वह स्नानोपरान्त अपने बाल सुखाती हुई सी दीख रही है, ऐसी आकृति भी नग्नता का ढिंढोरा पीटती नहीं लगती। नग्नता के प्रति कला का आकर्षण चिरस्थायी है लेकिन यह कलाकार पर निर्भर करता है कि वह अपने अंकन में नग्नता को सहज आकर्षण और शील का द्योतक बनाने में समर्थ है अथवा दुर्दमनीय चेष्टा को उभारने में सहायक। अमृता शेरगिल का एक चित्र है — दुल्हन का शृंगार। चित्र ग्रामीण भारत के जन-जीवन की अत्यन्त सुरुचिपूर्ण झांकी प्रस्तुत करता है। यहां दुल्हन की अर्द्ध नग्न आकृति के शृंगार में रत दो महिलाएं दिखाई देती हैं, साथ में एक बालिका बैठी है और अधेड़ आयु की महिला के पीछे छोटा सा बालक। भारतीय जन-जीवन के अन्तरंग की ऐसी झलकियां अमृता की कलम से बखूबी चित्रित हुई हैं। उनका एक अन्य चित्र है जिसमें पहाड़ी महिलाओं की आकृतियां हैं। इन चार आकृतियों में दो महिलाएं हैं, एक बड़ी लड़की और एक छोटी। दो महिलाएं अपने परम्परागत ढंग से बनी-संवरी हैं लम्बा और पतला सा जूड़ा किए हैं, सुन्दर कपड़े पहने हैं, चूड़ीदार पाजामें हैं उनके और ऊपर दुपट्टे ओढ़े हुए खड़ी हैं। एक महिला नाक में बलाक पहने हुए है और दोनों हाथों से मिट्टी की एक पारी उठाए खड़ी है जो किसी शुभ पर्व की ओर संकेत करती है। पूरा चित्र घर के भीतर किसी तीज-त्योहार अथवा किसी अन्य मंगल पर्व के अनुरूप इन आकृतियों के व्यवहार, कार्य-कलाप और व्यस्तता को संकेतित करता है।

१९३६ में बने अमृता शेरगिल के दो अन्य चित्र हैं—(१) अछूत बालक और (२) बाल विवाह। दोनों चित्रों को देखकर यह आसानी से समझा जा सकता है कि उसका कलाकार मन भारतीय समाज की विसंगतियों और विषमताओं के प्रति कैसे जागरूक रहा और उसने अपनी कला के माध्यम से उन्हें अंकित कर उनके प्रति कैसे अपना विद्रोह प्रकट किया।

अमृता शेरगिल की समस्त कलाकृतियों को देखकर यह सहज ही निश्चय हो जाता है कि वह अपने युग को जीती रही हैं। उनके सम्पूर्ण चित्रांकन में एक गहरा विषाद प्रतिफलित हो आया है और उसका कारण है कलाकार की स्वभावजन्य सम्वेदनशीलता। अपनी इसी मनोवस्था को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने भरी-पूरी ईमानदारी से स्वीकारा था, "यह हो सकता है कि जो उदासी,

जो अद्भुत वर्गगत कुरूपता में अपनी आकृतियों में भरती हूं वह मेरे ही भीतर किसी चीज़ के साथ मेल खाती है, वह कुछ मेरी प्रकृति का एक अन्तर्गुण है। यही कारण है कि अत्यन्त खुश और सन्तुष्ट की अपेक्षा मेरी कला जीवन की विषादयुक्त अभिव्यक्ति बनी है।"

ऐसा लगता है कि उत्तरी भारत के जन-जीवन के रुचिपूर्ण चित्रांकन के बाद अमृता को यह एहसास हुआ कि उसे दक्षिण भारत के दर्शन अवश्य करने चाहिए। १९३६ के उत्तरार्द्ध में और १९३७ के आरम्भ में वह ऐसी झलकियां संकलित करने के लिए घूमती रहीं। दक्षिण भारत भी गईं और वहां के जन-जीवन सम्बन्धी उन्होंने अनेक प्रतिनिधि व कलात्मक चित्र प्रस्तुत किए। अजन्ता के दर्शन से तो वे विशेष रूप से प्रभावित हुईं थीं। यह अजन्ता के दर्शन के बाद ही उसके लिए सम्भव हुआ था कि उसने अपनी शैली को इस प्रकार मोड़ा तथा परिमार्जित किया कि उसकी शैली में परम्परागत विशिष्टता समावेश पा सकी और उसने यह महसूस किया कि इस कला थाती के प्रति वह सहृदय आभारी है।

अजन्ता और दक्षिणी भारत के दर्शन के बाद वह अपनी उदासी-भरी मन:स्थिति से थोड़ी उभर गई। अब उसे अपना देश, अपने लोग महज़ जीने की मजबूरी के प्रतीक ही मालूम नहीं दिए बल्कि उसे अपने देश की परम्परा में, उसकी जीवन-पद्धति में बहुत कुछ विशिष्ट और रुचिपूर्ण भी मालूम दिया। जब वह अपनी यात्रा से शिमला वापिस आई तो उसने अपनी स्मृतियों को उकेरा। उसने सामान्य लोगों के रहन-सहन, तीज-त्योहार, आचार-व्यवहार को एक आत्मीयता से देखा। अब उसे भारत माता के उस विषादपूर्ण चित्र के स्थान पर उसके सुन्दर सुरुचिपूर्ण झांकियां दिखाई दीं। उसकी इन आकृतियों में वधु श्रृंगार (१९३७), ब्रह्मचारी (१९३७) और प्रार्थनारत बच्चे जैसे चित्र उल्लेखनीय हैं। इन चित्रों में विषाद की रेखा तिरोहित हो गई है और जीवन की कार्यरत तन्मयता, साधारण सुरुचिपूर्ण झलकियां तथा अन्य आस्थाजनक क्षण रूपायित हुए हैं। ऐसे चित्रों में किस्सागोई (अक्तूबर, १९३७) सुप्रसिद्ध कृति है जिसमें कहानी सुनाने वाली महिला चारपाई पर बैठी है, उसके साथ ही उसकी सेवा में रत एक अन्य महिला पंखा लिए बैठी है और नीचे चार महिलाएं कहानी को ध्यान से सुन रही हैं। इसी चित्र में एक गाय और बछड़ा खड़े हैं जो सम्पूर्ण चित्र के अविभाज्य पात्र लगते हैं। एक पुरुष दरवाज़े की ओट में खड़ा चुपचाप सुन रहा है। लगता है वह उनका ध्यान न बांटने के लिए सतर्क है लेकिन किस्सा सुनने और उनमें रत महिलाएं भी उसके लिए एक अदम्य आकर्षण है। चित्र की लयात्मकता सुन्दर है जिसे उभारने में अजन्ता अथवा पहाड़ी चित्रशैली द्वारा अमृता जाने-अजाने में प्रभावित-सी लगती हैं।

१९३८ के आरम्भ में अमृता शेरगिल उत्तर प्रदेश गईं। वहां भी उसने ग्राम्य जीवन की एक झांकी 'गणेश पूजा' शीर्षक से एक चित्र में प्रस्तुत की है। वहीं लखनऊ और इलाहाबाद में उसने अपने चित्रों की प्रदर्शनी भी लगाई थी।

जून, १९३८ में अमृता बुदापेस्त गईं जहां डा० विक्टर एगन से उसका विवाह हुआ। लगभग एक वर्ष के पश्चात् जुलाई, १९३९ में वह भारत लौट आईं। उत्तर प्रदेश में गोरखपुर के निकट सरैया में दो वर्ष के करीब रही। यहां उसके पिता की जागीर थी। इस आवास के दौरान उसके पति ने एक चीनी मिल में डाक्टरी की। यह छोटा सा गांव शहरी तड़क-भड़क से बहुत दूर

था। यहां के जन-जीवन की कुछ सुन्दर कलात्मक कृतियां अमृता ने प्रस्तुत की हैं। हल्दी पीसती महिलाएं (१९४०), दुल्हन (१९४०) आदि उसकी इसी काल की कृतियां हैं। यद्यपि उसका जी देहातों के एकान्त, सुरम्य वातावरण में खूब रमता था लेकिन उसकी कला महज 'स्वान्तः सुखाय' रह जाए ऐसा उसे अच्छा नहीं लगता था। वह सम्पूर्ण जगत की कला सम्बन्धी गतिविधियों के प्रति जागरूक थीं और यहां इस छोटे से गांव में उसने शेष दुनिया से अपने आपको कटा हुआ पाया। १९४० में प्रख्यात कला समीक्षक कार्ल खण्डलवाला के नाम अपने पत्र में उसने लिखा कि 'अपनी कला की समझ-बूझ के अभाव में मैं पीड़ित हूं·· समय गुज़रने के साथ-साथ मेरी कलाकृति और भी कम समझी और पसन्द की जा रही है।' सितम्बर, १९४१ में डा० एगन के साथ उसने लाहौर में एक मकान लिया। वहां वह अपनी नयी कृतियों की प्रदर्शनी लगाने की तैयारी कर रही थीं लेकिन इसी बीच वह बीमार पड़ गई और दिसम्बर, ५ का वह दुर्भाग्यपूर्ण दिवस आया जब अमृता ने इस संसार से विदा ले ली·· सदा सदा के लिए।

अमृता शेरगिल अपने चेतन-अवचेतन में एक कलाकार थीं। उसे महज़ रंगों से खेलना व मनोरंजन नहीं करना था। उसके जीवन का ध्येय उसी के शब्दों में प्रकट होता है, 'मैं रंगों की पूजा करती हूं।' उनका यह कथन उसके जीवन को वैन गॉग की तरह ही उद्घाटित करता है जिन्होंने अपने भाई थियो को लिखे एक पत्र में लिखा था: 'मैं प्राथमिक रूप से कला के लिए जीता हूं, मेरे लिए स्वस्थ रहना गौण है।'

आज अमृता शेरगिल के अधिसंख्य चित्र नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली में संरक्षित हैं और कुछ एक श्रीमती इन्दिरा सुन्दरम के पास। चार दशक पश्चात् भी आज उन चित्रों का आकर्षण लुप्त नहीं हो पाया है। यूं इस दौरान भारत की राजनैतिक अवस्था में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। शहरी सामाजिक अवस्था में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ है लेकिन जहां ग्रामीण भारत का प्रश्न है वहां परिवर्तन की गुंजाइश बराबर बनी हुई है। अमृता शेरगिल ने जिस भारतीय समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है, वह आज भी अधिक बदला हुआ नहीं दिखता। लेकिन यही कोई विशेषता नहीं। कलाकार उन गहराइयों में झांकी है जहां उसे भारतीय समाज की शाश्वत चेतना दिखाई दी है। जहां उसने बाह्य जड़ स्थिति का चित्रण कर भारतीय जन-मानस को उद्बोधन दिया है वहां भारतीय जन-जीवन का आन्तरिक सौन्दर्य भी उसके चित्रों में प्रस्फुटित हुआ है और उन चित्रों को देखने वाला भारत की दीन-हीन अवस्था को घृणा की दृष्टि से नहीं देखता, वह कलाकार दृष्टि की आत्मीयता से अभिभूत हो सकता है। इस दृष्टि से बंगाल चित्रकला की अपेक्षा अमृता शेरगिल के चित्र कहीं अधिक सशक्त व सक्षम हैं वे भारतीय समाज का कहीं अधिक व सही प्रतिनिधित्व करते हैं। आज जब सम सामयिक चुनौती के समक्ष बंगाल चित्रशैली का शोर-शराबा घट गया है और वह अभिव्यक्ति का सक्षम माध्यम नजर नहीं आती, अमृता शेरगिल के चित्र अब भी अपनी महत्ता और स्थान बनाए हुए हैं। इन चित्रों की सराहना कार्ल खण्डालवाला, प्रो० ऐरिक डिकिन्सन, आर० गेज जैसे तत्कालीन सुप्रसिद्ध कला समीक्षकों ने तो की ही थी लेकिन आज तक नई पीढ़ी के कलाकार उसकी आकृतियों से बराबर प्रभावित होते आए हैं। सम्भवतः अमृता शेरगिल को, जैसा कि किसी भी महान व्यक्ति के साथ होता है, उसके जीवन के दौरान अपने लोगों से

वह मान सम्मान नहीं मिला जो आज उसे स्वतः ही कला-जगत में प्राप्त है। आज उसके चित्रोंको देख कर एक बात स्पष्ट होती है कि अमृता शेरगिल के समय से लेकर आज तक उस सी कला देखने में नहीं आई जिसमें अपनी मिट्टी की महक हो, जो अपने लोगों के सुख-सौन्दर्य, दुख-दर्द के प्रति सजग हो, जिसमें कलात्मक अभिव्यक्ति की सहज क्षमता हो और इससे अतिरिक्त काल के मानदण्ड पर जब हम उसे देखें परखें तो हमें मालूम दे कि उसमें अतीत का समुचित गर्व-गौरव है, वर्तमान का एहसास है और भविष्य के प्रति उद्बाधन है।

सैलजा, संजौली,
शिमला–६।

बारह-मासा लोक-गीत – एक अध्ययन

–डॉ० पद्मनाभ गौतम

लोक-गीतों में बारह-मासा का अपना ही एक विशेष महत्व है। लोक-गीत मनुष्य की खुशी, गमी, इच्छा, लालसा तथा तड़पन की सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं। इनमें कृत्रिमता लेश मात्र को भी नहीं छूती। झिंज, झंझोटी, गंगी आदि लोक-गीतों की तरह बारह-मासा भी नारी हृदय की करुण व्यथा कथा का विदारक चित्रण करता है।

बारह-मासा को समझने के लिए हमें सम्भवतः यह जानना आवश्यक होगा कि इन गीतों में किस प्रकार के गीत गाये जाते हैं। बहुत लोगों को यह भ्रान्ति हो जाती है कि इन गीतों में केवल विभिन्न ऋतुओं का सौन्दर्य ही वर्णित है। परन्तु वस्तुतः यह बात नहीं है। इस भ्रान्ति का एक कारण सम्भवतः यह भी है कि डॉ० एम०एस० रन्धावा ने एक कांगड़ी चित्रों का संकलन प्रकाशित किया है जिसका नाम है 'बारह-मासा चित्र'। ये चित्र, ऐसा समझा जाता है कि कांगड़ा के प्रसिद्ध एवं कला प्रेमी राजा संसारचन्द ने अपने चित्रकारों से बनवाये हैं। इन चित्रों में सभी महीनों की ऋतुओं के सौन्दर्य का सजीव चित्रण किया गया है। वस्तुतः इन चित्रकारों ने संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास के ऋतु संहार तथा हिन्दी के कवि बिहारी की सतसई से प्रेरणा लेकर इन चित्रों का निर्माण किया है। इन चित्रों का बारह-मासा लोक-गीतों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

बारह-मासा लोक-गीतों में तो विरह विदग्धा नारी वेदना का वर्णन है। उनके कन्त परदेश चले गये हैं। बेचारी घर में अकेली हैं। इस दयनीय स्थिति में वे हर मास में होने वाली विशेष बातों को सोच कर अपने पति को याद करके अपने दुःख को प्रकट करती हैं। इन स्त्रियों को प्रोषित पतिका कहा गया है। बारह-मासा लोक-गीतों की यही विषय-सामग्री हमें डॉ० गौतम व्यथित द्वारा लिखी गई पुस्तक 'झूमे धरती गाये लोक' में भी मिलती है। राजस्थानी लोक-गीतों में गाये जाने वाले बारह-मासा में भी हमें यही विशेषता मिलती है। आलम लुहार ने भी पंजाबी में गाये हुए बारह-मासा में इसी वेदना को गाया है।

इन लोक-गीतों का वास्तविक अभिप्राय समझ लेने के पश्चात् सम्भवतः यह समझना भी आवश्यक होगा कि ये गीत किन आर्थिक एवं सामाजिक स्थितियों में उत्पन्न हुए होंगे। वस्तुतः बात ऐसे है कि उस समय लोगों के अपने घर में गुजर करने योग्य भूमि अथवा कोई अन्य काम काज नहीं होता था। बहुत बार विवाह के लिए साहूकारों से ऋण लेना पड़ता था। पैसे की बहुत आवश्यकता होती थी। इसी लिए लोग नौकरी या कोई काम-धन्धा या व्यापार आदि के लिए अपने घर से बहुत दूर-दूर बहुत दिनों के लिए चले जाया करते थे। इनमें से बहुत से लोग तो नव विवाहित भी हुआ करते थे। इनकी पत्नियां घर में अकेली रहा करती थीं।

उस सामन्ती व्यवस्था में संयुक्त परिवार का प्रभाव बहुत सशक्त हुआ करता था। लोग अपने मां-बाप की सेवा के लिए, अथवा परदेश में आने वाली कठिनाइयों के डर से अथवा अपने गांव से सम्बन्ध बनाए रखने के कारण अपनी पत्नियों को घर में छोड़ कर स्वयं परदेश चले जाया करते थे। यह व्यवस्था न केवल हिमाचल, जम्मू-काश्मीर, पंजाब, राजस्थान आदि प्रदेशों में अपितु सारे भारत में पाई जाती थी और अब भी है। अभी भी हम देखते हैं कि चण्डीगढ़ में काम करने वाले मजदूर उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, तामिलनाडू, आदि प्रदेशों से आये हैं। इनमें से बहुत कम मजदूरों ने अपनी स्त्रियों को साथ लाया हुआ है। शिमला की सुन्दर ठण्डी सड़कों पर काम करने वाले गोरखे तथा पूर्विये बेचारे बड़े दूर से अकेले धन कमाने के लिए आये हैं। उपर्युक्त तथ्य का समर्थन करने के लिए अन्य लोक-गीतों के कुछ अंश यहां प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा :

"साजन गये परदेश
असां रखणा मैलड़ा भेष।"

× ×

"जम्मुये रेया नौकरा,
चिट्ठी मनी भेजदा,
अप्पु मनी औन्दा।"

× ×

"बापुये तां मेरे खादी रा बरीणा,
साहूकार हुण देन्दे नी जीणा,
कन्ता परदेसीया तैं कदी औणा।"

× ×

"साड्डे करीं बड़ा रुजगार,
कणकां निसर गइयां
कदे आके चा:ती मार,
मुड़या लाम्मा तों।"

× ×

"रैहणा ओ मेरेया बेलियां
मैं कल्लयां किया रैहणा।"

× ×

"रोन्दी रोन्दी चुप करी जा
कन्ने चलणा तां पै:न कपड़े।"

× ×

"मां नी रैहणा कल्लेयां
मिंजो लई चल सौंगी ओ।"

× ×

"हऊं सिजुं घरे आपणे
कन्त सिजे परदेस ओ।"

आदि, आदि।

विरह-विदग्धा नारी की इसी वेदना, कसक, टीस एवं तड़पन से बारह-मासा लोक-गीतों का जन्म हुआ है। इन गीतों में प्रोषित-पति का हर महीने की विशेषताओं का वर्णन करते हुए अपने अकेले होने के दुःख को गा कर हल्का करती है। बिलासपुर, हमीरपुर, कांगड़ा और ऊना में इन गीतों को श्रावण मास में गाया जाता है। श्रावण मास में झूले डाले जाते हैं अतः लोग इस महीने को पींगों का महीना भी कहते हैं। मण्डी, शिमला तथा सिरमौर में इन गीतों को चैत्र मास में गाया जाता है।

इन लोक-गीतों के कई अन्य प्रकार भी हैं, जैसे सतमासा, छमाही, माही व इक-मासा। बारह-मासा गीतों में बारह महीनों के दुःख का वर्णन किया जाता है। सतमासा में सात महीनों का, छमाही में छः महीनों का तथा माही व इक-मासा में एक ही महीने की व्यथा का वर्णन किया जाता है। उपर्युक्त अन्तर के सिवाये बाकी सभी बातें इन लोक-गीतों में एक सी ही पाई जाती हैं।

बारह-मासा लोक-गीतों की एक और प्रकार भी है जिसे धार्मिक बारह-मासा की संज्ञा दी जा सकती है। धार्मिक बारह-मासा में हर महीने का वर्णन तो किया जाता है पर इसमें नारी व्यथा-कथा नहीं होती। इसमें भगवान् का स्मरण करने तथा दर्शन करने की इच्छा की ही बात कही होती है। उदाहरण प्रस्तुत है :

"वसाख बसम्बर वासुदेव, फुल वामन हरमन हारे।
पद्मनाभ परमेसर सिमरू, परसराम बलकारे जी ।।
हरिनाम हृदयधारी लीजो जब लगे प्रभु के सरनम्
हरि भक्त अरे हरि भजन बिना,
तुम बिन भव सागर किस विध तरनम् ।।"

"जेठ जपो जगदीश सदा प्रभू
यम के त्रास निवरण
नाम लेत सब पाप कटत हैं
हुण क्या गाफल करणम्।
भक्त बच्छल भगवान भजो
सब संकट दोष निवरण्।
हरि भक्त अरे हरि भजन बिना।।"

इसी प्रकार अन्य महीनों का वर्णन किया गया है। पंचमी पादशाही श्री गुरु अर्जुन देव जी ने भी इसी प्रकार के बारह-मासा का वर्णन किया है। इसके कुछ बोल इस प्रकार हैं :

"चेत गोबिन्द अराधियो होवे आनन्द घणा,
सन्त जना मिल पाइये रसना नाम पणा।
जिन पाया प्रव आपणा आये तिसे गणा
इक खिन्न तिस बिन जीवणा
बिरथा जन्म जणा।

जलथल महिअल पूरेया
खेयां बिच वणा,
सो अब चित्त न आवये
कितड़ा दुःख गणा।
जिने रावेया सो प्रभु
तिन्ना भाग मणा
हरि दर्शन को मन लोचदा
नानक प्यास मना।
चेत मिलायो सो प्रभु
तिस के पाय लगो।"

एक अन्य प्रकार के बारह-मासा में प्रोषित-पतिक का विरह वर्णन है। यह बारह-मासा भी दो प्रकार का होता है। पहली प्रकार में तो नारियां सभी महीनों का वर्णन करते हुए अपने प्रवासी पति से विछोह के दुःख को प्रकट करती हैं। दूसरी प्रकार में वे अपने पति को परदेश जाने से रोकती हैं। उन्हें पतियाने के लिए बारह महीनों के विभिन्न आकर्षणों का वर्णन करती हैं। जब बारह महीने पूरे हो जाते हैं तब वे कहती हैं, "अब आप चाहे चले जायें। भगवान् आपको परदेश पहुंचते ही नौकरी पर लगा दें।"

पहली प्रकार के बारह-मासा के कुछ बोल इस प्रकार हैं :

"चढ़िया महीना चेत्र, चेत्र फुल लाया जी,
जिन्हां दे कन्त परदेस, उन्हां नी लाया जी।
चढ़िया महीना बैशाख, अगणे पक्की दाख,
दाखां प्यारियां पक्कियां,
जिन्हां दे कन्त परदेस उन्हां नी चक्खियां।
× × ×
चढ़िया महीना काला
कि कालियां रातीं न्हेरियां।
जिन्हां दे कन्त परदेस,
उन्हां सोचां घेरियां।"

दूसरी प्रकार के बारह-मासा के बोल हैं :

फूली तां फूली पिया जी नागर बेल,
फुल तां फुलया गुलाब दा।
किती तां फूली पिया जी नागर बेल,
किती तां फुलया फुल गुलाब दा।
अंगणे तां फुली पिया जी नागर बेल,
पुछाड़े तां फुलया फुल गुलाब दा।

किनी तां तोड़ी पिया जी नागर बेल,
किनी तां तोड़या फुल गुलाब दा।
मूरखें तां तोड़ी पिया जी नागर बेल,
चतरे तां तोड़या फुल गुलाब दा।

यहां फूलते हुए नागर बेल तथा गुलाब बसन्त ऋतु तथा चैत्र मास के प्रतीक हैं। आगे है :

"सस्सु दा जाया मेरीया नणदा दा बीर,
नित्त उट्ठी जांदा चम्बे चाकरी।
उच्ची तां माड़ी सस्सु जी पलंग ढ़लाया,
बैठी समझायां पुत्ते आपणे।
समझेयां न रैहन्दा सस्सु जी,
बरजेयां न रैहन्दा,
नित्त उट्ठी जान्दा चम्बे चाकरी।
उच्ची तां माड़ी बहुये दीपक जलायां,
बैठी समझायां कन्ते आपणे।

सास का बहुत अनुनय-विनय करने के पश्चात् भी जब सास अपने पुत्र को परदेश जाने से नहीं रोकती है तो बेचारी थक हार कर स्वयं ही उसे पतियाने लगती है :

चैंते न जायो पिया जी चैंते न जायो,
चैत महीने कूजे फूल दे।
बैशाखे न जायो पिया जी बैशाखे न जायो,
बैशाख महीने दाखां पक्कियां।
जेठे न जायो पिया जी जेठे न जायो,
जेठ महीने पक्खुआ झोलियो।
हाड़े न जायो पिया जी हाड़े न जायो,
हाड़ महीने अम्बुआ चूप दे।
सौणे न जायो पिया जी सौणे न जायो,
सौण महीने पींगां झूट दे।
भादों न जायो पिया जी भादों न जायो,
भादों महीने न्हेरियां रातीं।
सौजे न जायो पिया जी सौजे न जायो,
सौज महीने पितर मनाइये।
कत्तके न जायो पिया जी कत्तके न जायो,
कत्तक महीने दयाली पूजीये।

मगँरे न जायो पिया जी मगँरे न जायो,
मगँर महीने लेफ भरां दे।
पोषे न जायो पिया जी पोषे न जायो,
पोष महीने लेफ ओढ़ दे।
माघे न जायो पिया जी माघे न जायो,
माघ महीने गीठा पूज दे।
फौगणे न जायो पिया जी फौगणे न जायो,
फौगण महीने फगुआ खेल दे।
होये तां होये नाजो बारा महीने,
जाणे दे कुण दिन आवणे।
जाओ तां जाओ पिया जी चैत महीने,
जान्देयां दी लगी जावे नौकरी।
खायों ता खायों पिया जी गरीयां-छुहारे,
पाणी बी पींयों ठण्डा नीर जी।"

अन्त में अपने पति को परदेस जाने के लिए कह ही देती है। सिगमण्ड फ्रायड का मनो-विश्लेषण जहां सत्य है वहां कार्ल मार्क्स का आर्थिक प्रभाव का सिद्धान्त भी ठीक है। रुपया-पैसा हमारे जीवन को प्रभावित करता है। इसी के लिए हम बहुत कष्ट, दुःख तथा यातनायें सहते हैं। किन्तु ये दुःख मन में चुपचाप बैठ कर नहीं रह जाते। हम गीतों द्वारा इनका निराकरण करते रहते हैं। इसी निराकरण के प्रयत्न से बारह-मासा लोक-गीत परिस्फुटित हुए हैं।

सहायक प्राध्यापक,
लोक प्रशासन संस्थान,
फेयर लॉन, शिमला - १७१ ०१२।

●★●

कांगड़ा के कवि कांशीराम की रामगीता

–डॉ० श्रीकान्त 'प्रत्यूष' गुलेरी

कवि कांशीराम कांगड़ा के एक ऐसे अज्ञात हिन्दी महाकवि हैं जिन की कवि उत्तम, रुद्रदत्त और बृजराज की भान्ति नागरी प्रचारिणी आदि सभाओं द्वारा कोई जानकारी तक नहीं ली गई। बृजराज की साहित्यिक कृतियों का अन्वेषण करते समय मुझे उत्तम, रुद्रदत्त और कांशीराम कवि की दुर्लभ पांडुलिपियां भी कवि के वंशजों और राजघराने से उपलब्ध हुई हैं। कवि कांशीराम बृजराज के पूर्वज थे। बृजराज के पिता रुद्रदत्त और कांशीराम प्राचीन वंश-वृक्ष के आधार पर सगे भाई ठहरते हैं। वंश-वृक्ष द्रष्टव्य है :

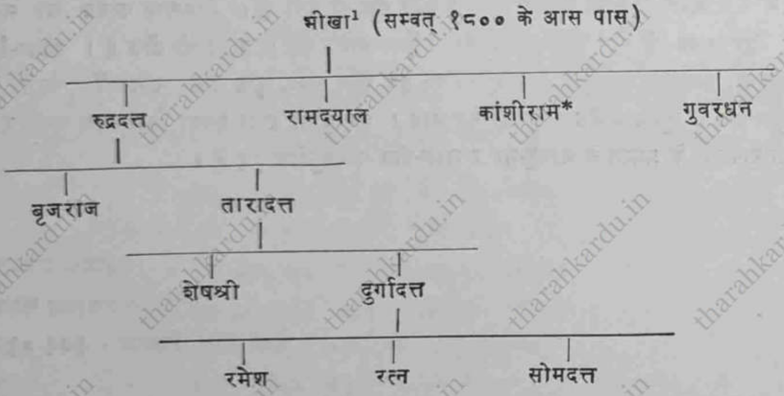

कवि कांशीराम का रचना काल सम्वत् १८०० से १८६३ वि० के मध्य ही हो सकता है। कांशीराम की 'रामगीता' सम्वत् १८६३ वि० में लिखी गई हैं। इस कृति का आरम्भ कब किया गया होगा यह अविदित है किन्तु इसकी परिसमाप्ति पुष्पिका में यों दर्शायी गई है "इति श्री रामगीते रघुपति कुमारजीत घर आईवा नाम चतुरदश अंक समाप्ति संपूर्ण शुभम् सम्वत् १८६३ वि०" पांडुलिपि के पृष्ठ का आकार १०" × ६" है। कृति के कुल ४७४ पृष्ठ हैं। कश्मीरी कागज़ पर लाल और नीली स्याही का प्रयोग किया गया है। अधिकतर छन्दों में कवि छाप विद्यमान है जो इसे कांशीराम की प्रामाणिक रचना स्वीकार करने के लिए काफी है। इसका वर्ण्य-विषय परम्परा-प्राप्त राम कथा है जो क्रमशः चौदह अंकों में विभक्त है। प्रथम अंक में छन्दों की संख्या ११३,

1. प्राचीन वंशावली के आधार पर जो पं० इन्द्रदेव शाहपुर (कांगड़ा) निवासी के पास उपलब्ध है।

दूसरे में ८८, तीसरे में १००, चौथे में १२, पांचवें में १०६, छटे में १३४, सातवें में ३४, आठवें में १२१, नवें में १२७, दसवें में ६१, ग्यारहवें में ६७, बारहवें में १२१, तेरहवें में १७२ तथा चौहदवें में १४२ छन्द हैं। कृति के प्रथम अंक में पृष्ठ आधे-आधे दीमक द्वारा खण्डित हैं जिसके परिणाम स्वरूप कथा के प्रारम्भिक अंश की विषय-वस्तु अपाठ्य है। द्वितीय अंक में राम का वनवास वर्णन, राम-लक्ष्मण सम्वाद तथा दशरथ-राम सम्वाद आदि के रोचक वर्णनों से कथा को आगे बढ़ाया गया है। वनवास वर्णन का यह सवैया कारुणिक भावों से ओत-प्रोत है :

वीर चल्यो संग है सुकुमार सु सोक भरें यों घर माहीं पिता है।
मात इते बिललात परी न सुहात कछु बिध सो न बसाहै ॥
तापर और चली संग नार सो को बरनै कवि या दुःख दाहै।
सूर ससी सिव संक बिना इन्ह साथ भले रघुनाथ निवाहै ॥[1]

तृतीय अंक में दशरथ के देह-त्याग की सूचना एक दोहा छन्द से दी गई है। भरत का अयोध्या आगमन, भरत का राम-लक्ष्मण से अयोध्या लौट चलने का अनुरोध, राम का अगस्त्य आश्रम में प्रवेश तथा शूर्पणखा का राम-लक्ष्मण के साथ वार्त्तालाप आदि प्रसंगों का समावेश किया गया है। चतुर्थ अंक में कवि द्वारा जानकी-हरण वर्णन बारह छन्दों में सूक्ष्म शैली में किया है।

यह अंक अपेक्षाकृत अन्य अंकों से अति सूक्ष्म है। सीता विलाप राम का वियोग-वर्णन, जटायु-रावण की मुठभेड़, राम का हनुमान से मिलाप, सुग्रीव से मित्रता, बाली-प्राण हरण तथा हनुमान को सीता की सुधि ले आने को भेजने तक की घटनाएं पांचवें अंक में समाहित हैं। सुग्रीव धन, जन एवं राज्य प्राप्त कर सुख एश्वर्यों में लिप्त हो जाता है। राम को दिए वचन विस्मृत कर बैठता है। राम, सुग्रीव को सक्रोध बुला भेजते हैं। उस अवसर पर का यह सवैया अवलोक्य है :

नाह बिना सीय दुखु पावत सो पुन सीय बिना दुख पावै।
हेत बड़ो दुहूं उरन यों सोई नेह तुमैं कवि 'राम' सुनावै ॥
जिउ छबि छीन ससी बिन रैन बिभावरी सावरी देह बनावे।
काल बितीत भयो इह रीत सों कोप सुकोप सुग्रीवहि बुलावै ॥[2]

'राम गीता' के षष्ठ अंक में कांशीराम कवि ने हनुमान का लंका-प्रवेश, सीता-विलाप, हनुमान-सीता-सम्वाद, रावण के नगर की कथा का हनुमान के मुख से वर्णन तथा हनुमान द्वारा लंका-दहन तक की घटनाओं का सांगोपांग चित्रण किया है। सातवें अंक में राम का लंका-प्रयाण तथा सेतुबंध का मार्मिक वर्णन है, जबकि विभीषण द्वारा रावण को समझाना बुझाना, रावण का उसे निर्वासित करना, विभीषण का राम की शरण में जाना, अंगद को पुनः लंका में भेजना, अंगद का भरी सभा में पैर रोपना आदि प्रसंग आठवें अंक की कथा का अंग हैं। ग्याहरवें अंक में मेघनाथ का युद्ध-प्रयाण तथा बाहरवें अंक में मेघनाथ वध-वर्णन चित्ताकर्षक बन पड़ा है। मेघनाथ के वधोपरान्त रावण की हृदयदशा को व्यंगित करता यह सोरठा भी पठनीय है :

नई कथा बिचार सुकव 'राम' हिरदे कही।
जिउ मछुली बिनु वार तिउ तरफै लंकापति ॥[3]

---

1. द्रष्टव्य—रामगीता, २/७१।
2. द्रष्टव्य—रामगीता, ५/१०५।
3. द्रष्टव्य—रामगीता, १२/५७।

तेरहवें अंक में सुलोचना का राम-लक्ष्मण के पास आगमन तथा रावण वध आदि की घटनाएं संकलित हैं। राम का आयोध्या आगमन, भरत-मिलाप तथा राम नाम जाप का माहात्म्य वर्णन चौदहवें अंक का वर्ण्य विषय है। राम के बल-पौरूष तथा नाम जाप के माहात्म्य को अधोलिखित सवैया छन्द में चित्रित किया गया है :

राम के पाइ को बल पाइ मैं बाल सो मार कै देस लयो।
अरु राम के पाइ के बल तै कपि मंडल में कपि राज भयो॥
इत राम के पाहन में तब ही चित चौपि मिलाह कें नेक दयो।
तब हों सब पूरन काम भये कवि 'राम' यहै जान लियो॥[1]

'राम गीता' में कवि राम ने दोहा, सोरठा, छप्पय तथा चौपाई छन्दों का खुलकर प्रयोग किया है। राम की भाषा समर्थ ब्रजभाषा है जिस पर प्रांतीय भाषा पहाड़ी का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। कृति की प्रामाणिकता सम्बन्धी संदेह की गुंजाइश नहीं क्योंकि कविछाप में 'राम' तथा कांशीराम स्पष्टतः लिखा पाया जाता है। हिन्दी साहित्य के वृहत इतिहास में डा० नगेन्द्र ने एक कवि काशीराम का उल्लेख किया है।[2] शुक्ल ने भी आख्यान काव्यों के उल्लेख में कांशीराम के नाम की गणना मात्र की है।[3] डा० कामिल बुल्के ने अपने शोध-प्रबन्ध राम कथा : उत्पत्ति और विकास में मद्रास से प्रकाशित 'रामगीता'[4] का उल्लेख किया है। किन्तु एक तो यह गुरु ज्ञान वासिष्ठ तत्त्व सारायण का भाग मानी गई है और दूसरे इसके १८ अध्याय हैं। हमारे कवि कांशीराम की 'रामगीता' ब्रज भाषा में लिखित नितान्त मौलिक रचना है यह किसी संस्कृत रामगीता आदि का अनुवाद नहीं है। रही बात 'कनक मंजरी वाले कांशीराम की जिस की चर्चा आचार्य शुक्ल ने की है उन्होंने कांशीराम की 'रामगीता' आदि रचना का कोई जिक्र तक नहीं किया है।

अतएव यह विषय शोध की व्यापक अपेक्षा रखता है, उससे पूर्व कांशीराम को कांगड़ा का कवि होने की मुहर नहीं लगाई जा सकती। हो सकता है 'कनक मंजरी' के कवि कांशीराम ने रामगीता का प्रणयन गुलेर के किसी राजा के आश्रय में रह कर किया हो। कांशीराम के लगभग २०० फुटकर छन्दों का संग्रह भी उपलब्ध है। फुटकर छन्दों की एक लघु पुस्तिका में एक छन्द पहाड़ी भाषा में दिया गया है जो उन्हें कांगड़ा प्रदेश से सम्बद्ध होने का प्रमाण देता है।[5] इसके साथ ही गुलेर के राजकवि बृजराज के पूर्ववर्ती दिए वंश-वृक्ष से उनका बृजराज का वंशज होने का विश्वास भी दृढ़ अवश्य होता है।

कीर्ति भवन, गुलेर,
जिला कांगड़ा (हि०प्र०)।

---

1. द्रष्टव्य—रामगीत, १४/१२७५।
2. द्रष्टव्य—हिन्दी साहित्य का वृहत्त इतिहास (नगेन्द्र) पृष्ठ ३४५।
3. द्रष्टव्य—हिन्दी साहित्य का इतिहास (शुक्ल) पृष्ठ २२२।
4. द्रष्टव्य—राम कथा : उत्पत्ति और विकास (कामिल बुल्के) पृष्ठ १५१।
5. मोतियां दी लड़ी जे विधातें आप घड़ी सिर देइ तेरें घड़ी घड़ी लाई घलनीं।
देव हैं हिरानगी बड़ी एहे मेरें मन ...... जिसा माउ जिसा दिखी ...... ॥
......कलीजे रलाई नहीं रली सोने ...... बेल बातें हलनी।
हे नी अलबेली ...... तूं निझक कहां चलनी॥ (द्रष्टव्य फुटकर छन्द, १६)
[यह छन्द दीमक द्वारा खंडित होने के परिणाम स्वरूप अपाठ्य है।]

हिमाचली लोक-साहित्य एवं ग्राम्य गीत

—डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी

'चिरपरिचित शब्द, चिरपरिचित बातें, चिरपरिचित स्वर यही लोक-गीत की शक्ति है।" "लोक-गीतों में धरती गाती है, पहाड़ गाते हैं, नदियां गाती हैं, फसलें गाती हैं, उत्सव और मेले, वस्तुएं और परम्पराएं सभी गाती हैं।"

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि गांवों में गाए जाने वाले गीतों की प्रचुरता है। ग्राम्य-गीतों का प्रचलन साहित्यक गीतों से बहुत पूर्व हो चुका है और इन्हीं ग्राम्य गीतों की प्रेरणा से साहित्य में गीतों का प्रवेश हुआ। लोक-गीत जहां एक ओर किसी व्यक्ति विशेष द्वारा रचित नहीं माने जाते एवं प्राच्य समय से चले आ रहे क्रम में व्यवहृत होते हैं वहीं ग्राम्य गीत उसी प्रकार ग्रामों के जन-जीवन में अत्यधिक मिले जुले होने पर भी नित नवीन रूपों में गायकों कवियों, द्वारा स्थानीय परिवेश की गन्ध लिए सहज भाव में गाए जाते हैं।

प्राचीन ऐतिहासिकता, साहित्यिक महत्ता व सहज विशिष्ट प्रान्तीय विशिष्टताएं लिए हिमाचल प्रदेश का लोक साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। लोक-नृत्यों नाटिकाओं, गीतों, संगीत वाद्यों, विभिन्न उप-भाषाओं यथा कांगड़ी, मण्डयाली, कुल्लुवी, बिलासपुरी तथा सिरमौरी आदि में घर-घर गाए जाने वाले ग्राम्य गीतों, चित्रकला के विभिन्न प्रयोगों तथा जनमानस में प्रचलित लोक-कथाओं गाथाओं का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है जिसके निमित्त आधुनिक सुविधायों यथा कैमरा, टेपरिकार्डर, लेखन टंकन यन्त्रों आदि का प्रयोग अधिक सुविधाजनक है। हिमाचली कांगड़ी गीतों व लोक-साहित्य के संरक्षण की ओर श्री एम० एस० रन्धावा के प्रयत्नों से आज कौन परिचित नहीं। हिमाचल प्रदेश की यह सांस्कृति विरासत साहित्य-जीवियों की एकाग्रता व कार्यक्षमता की अपेक्षा करती है।

लोक संगीत ही ग्राम्य गीतों के उद्भव, विरास का आधार रहा है। अन्य प्रदेशों में भी यही सत्यतथ्य सिद्ध है। वर्षा में मल्हार गाया जाता है। ब्रज में सावन के गीत आज भी मल्हार के नाम से कहलाए जाते हैं। इनको लक्ष्य में रखते हुए यह बात कही जा सकती है कि मल्हार आरम्भ में लोक संगीत की वस्तु रहा होगा। तानसेन के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि दीपक राग गाने के कारण उसका समस्त शरीर झुलस गया—कहते हैं कि एक कृषक युवती ने मल्हार गाकर उसकी वेदना को शांत किया। इससे पता चलता है कि वह उस युग की बात है जब मल्हार ने उच्च संगीत में नया-नया प्रवेश किया होगा और उस समय तानसेन जैसे संगीतज्ञ इस बात को स्वीकार करते थे कि इसका मूल स्रोत लोक संगीत ही है।

यह आश्चर्य का विषय है कि जनजीवन में व्यस्तता, जीवन यापन व आजीविका की कठिनाइयों के होने के बावजूद भी लोक गीतों व ग्राम्य गायन की परम्परा हिमाचल प्रदेश में अत्यन्त

समृद्ध रही है यद्यपि गीतों का प्रचलन बहुधा संघर्षमय देश में नहीं होता। इनकी अधिकता से प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर व समृद्धता का पता चलता है। ग्राम्य गीत भिन्न अवसरों और त्योहारों पर गाए जाते हैं। वैसे तो सम्पूर्ण भारत में प्रत्येक ऋतु का पृथक संगीत है, प्रत्येक ऋतु उत्सव देश के सौन्दर्य बोध में परिचायक हैं परन्तु हिमाचली लोक साहित्य में विशेष रूप से जिन लोक गीतों का संगीत के पारम्परिक तुरही आदि वाद्यों से प्रयोग किया जाता है वह अत्यन्त मनोहरी कर्णप्रिय व अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्ट है। ग्राम्य गीत अपने ही यहां अधिक प्रचलित हैं और देशों के मुकाबले में हमारे यहां के ग्राम्य गीत सर्व-साधारण जन मानस की मानसिकता के अधिक प्रतीक हैं। इन पर खेतों और खलिहानों की भी छाप है। इनमें हिमाचल जन्मभूमि की गौरवशालिनी और यशस्वी आत्मा की पुकार निहित है। इनमें एक विशाल संस्कृति का गर्वीला इतिहास अभिव्यक्त हुआ है।

अधिकांश गीत पारिवारिक क्षेत्रों को लेकर चलते हैं। पारिवारिक जीवन का समस्त सुख-दुःख लोक गीतों की वस्तु बन गया है। आनन्द की घड़ियों में गरीब पहाड़न भी सोने के बर्तनों व उत्कृष्ट घड़ोलुओं का गान करती हैं। प्रदेश के प्रायः प्रत्येक परिवार में एक ही सी विधियों का पालन होता है, कहीं भी वैषम्य नहीं है। यद्यपि हिमाचली लोक गीत अनेक शैलियां प्रस्तुत करते हैं तथापि ग्राम्य गीतों में एक ही समान कौटुम्बिक तथा पारिवारिक समस्याओं, सुख दुःख हर्षोल्लास की घड़ियों का चित्रण मिलेगा। ग्राम्य गीत चाहे किसी भी जनपद—कांगड़ा, मण्डी, चम्बा सिरमौर, बिलासपुर आदि के हों। हां प्रत्येक जनपद का लोक साहित्य में अपना रंग है अपना अलग रूप अवश्य है। गहन अध्ययन से यह पता चलते देर नहीं लगती कि ये सभी रंग एक दूसरे के पूरक हैं। समस्त हिमाचल प्रदेश साहित्यिक सांस्कृतिक दृष्टिकोण से एक है, हिमाचली लोग गीत अपनी-अपनी अनेक शैलियों सहित इस तथ्य का समर्थन करते हैं। हमें लोक साहित्य का अध्ययन करने पर हिमाचली जन जीवन का वास्तविक चित्र मिलेगा तो, परन्तु पूर्ण रूप और मूल रूप में नहीं। इसमें तो ग्राम्य गीत ही सन्तुष्ट कर सकते हैं। ग्राम्य गीतों के चित्र पूर्ण सहज, मौलिक और वास्तविक रूप में पाए जाते हैं। प्राचीन काल व हिमाचली इतिहास की परम्परा ग्राम्य गीतों में सुरक्षित है। ये सारे गीत जीवन के विशेष क्षेत्र का प्रतिपादन करते हैं।

ग्राम्य गीत भावों की तीव्रता में प्रकट होते हैं। अधिकतर स्त्रियों द्वारा ही इनकी रचना हुई है क्योंकि सुख-दुःख का प्रभाव नारी पर ही अधिक होता है। नारी में भावावेश अधिक होने से यह तथ्य स्वयं सिद्ध है। गांव का रुदन भी संगीतमय होता है। यहां विलाप भी संगीतमय परम्परागत ही होगा। जिला कांगड़ा में मृत्यु के अवसर पर गाये जाने वाले शोक गीत अद्‌भुत करुण रस में वैचित्र्य उत्पन्न करते हैं। दूर खड़ा कोई तो इसे गान ही समझेगा रुदन नहीं। ग्राम्य गीतों में सुख-दुःख घुल मिल कर स्वयं एकाकार हो जाते हैं। मनोविज्ञान आवेश में तीव्र होता है। नारी में हृदय पक्ष प्रधान है और पुरुष में बुद्धि पक्ष। इसी कारण नारी के ही द्वारा ग्राम्य गीतों में वृद्धि हुई है। ग्राम्य गीत अपने रूप में सहज स्वाभाविक होते हैं और इनमें कृत्रिमता का आवरण सर्वथा नहीं है। साहित्यिक गीतों में व्यञ्जना की कृत्रिमता आ जाती है परन्तु ग्राम्य गीतों में व्यञ्जना की उलझन तथा चक्कदार बातें अथवा कारीगरी नहीं होती। जिन भावों की प्रवृत्तियों की प्रेरणा हुई है उन्हीं से सम्बन्धित ग्राम्य गीत होते हैं इसी लिए वे स्वाभाविक रूप में हमारे सामने आते हैं।

भाषा की सजावट आदि कृत्रिमता की ओर ले जाती है तथा शैली भी दुरुह हो जाती है परन्तु ग्राम्य गीतों में इनका प्रयोग नहीं होता इसी लिए वे सीधे हृदय को प्रभावित करते हैं। ग्राम्य गीतों का जबरदस्त संस्कार मानव पर पड़ा। ग्राम्य गीतों ने साहित्य सृजन के मार्ग को भी सुगम बनाया। आज कल के गायनों में इनका रूप अत्यधिक विकृत हो गया है। साहित्यिक गीतों को ग्राम्य गीतों ने ही शक्ति, बल और प्रेरणा दी और उनका प्रचलन किया। कविता का आरम्भ ही प्रकृति की गोद में होता है और इसी कारण कवि अधिकतर प्रकृति के रम्य स्थानों में ही पाये जाते हैं। गांवों में प्रकृति का सौन्दर्य अपने पूर्ण सौरभ से शोभित होता है इस कारण ग्राम निवासी ही अधिकतर कवि हुए हैं। काव्य की प्रेरक शक्ति गांव में प्रचलित गीतों से ही आई है। हिमाचलेतर राज्यों में भी यही सर्वमान्य तथ्य देखा जा सकता है। यथा ब्रज में बहुत प्राचीन काल से कृष्ण-लीला आदि गीत चले आए हैं जो कि श्रीमद्भागवत से भी प्राचीन हैं। वल्लभाचार्य सूर के गायन से मुग्ध हो उठे और तब उनको अपना शिष्य स्वीकार किया।

इस प्रकार ग्राम्य व लोक-गीतों की साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्ता उनकी जन-मानस में गहरी पकड़ से स्वयं सिद्ध है। हिमाचल प्रदेश जैसे नवविकसित एवं साहित्यिक रूप से नव प्रतिष्ठित राज्य में लोक-साहित्य के विकास की समस्या से दो-दो हाथ होते समय घोर आपा-धापी के इस युग में लोक गीतों व ग्राम्य गायन शैलियों के संरक्षण की ओर भी अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। लोक गीतों को घर-घर जाकर लिपिबद्ध कर सकने, उनके प्रकाशन, टेप-रिकार्डर आदि की सहायता से संग्रह के कार्य निस्सन्देह लोक साहित्य की समृद्ध विरासत में अध्ययनार्थ अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य प्रदेश की साहित्यिक संस्थाएं स्वयं तथा हिताचल प्रदेश का साहित्य-संस्कृति विभाग राज्य व सरकारी स्तर पर निपटा सकता है यदि निस्वार्थ निष्ठा एवं साहित्यिक अभिरुचियों से अनुप्रेरित होकर कार्य किए जायें। ऐसे प्रयत्नों के अभाव में हिमाचली लोक-साहित्य की महत्त्वपूर्ण कड़ी ग्राम्य गीत शनैः-शनैः विस्मरित होती जायेगी एवं हम अपने लोक-साहित्य की उपलब्धियों से वंचित हो जायेंगे।

चन्द्र भवन (हिमाचल संस्कृत संस्थान)
१७६०२८, गुलेर, कांगड़ा (हि०प्र०)

●★●

कुलुई में रामायण

— कमलेश कुमारी ठाकुर

भारतीय समाज में राम कथा की परम्परा जितनी महान है, उतना ही इस का स्वरूप और क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत और व्यापक है। यह अपने लम्बे इतिहास में युग-युगान्तर से अनेक विद्वानों, महापुरुषों, साधु-सन्तों की लेखनियों और वाणियों द्वारा परम श्रद्धा और अनेक रूप से गाई तथा प्रसारित की जाती रही है। गोस्वामी तुलसीदास के ये शब्द इसी व्यापकता और अनेक रूपता के द्योतक हैं :

हरिअनन्त हरि कथा अनन्ता। कहहिं सुनहिं बहुविधि सन्ता।
रामचन्द्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए।

मूल रूप में राम कथा एक रहते हुए भी इसका स्वरूप हर युग और हर समाज में परिस्थितियों के अनुरूप बदलता रहा है। समाज के समय विशेष में जिस अनिवार्यता की अपेक्षा रही है राम कथा का स्वरूप उसी के अनुकूल ढलता रहा है। परिस्थितियों के फलस्वरूप ही गोस्वामी तुलसीदास के मर्यादा पुरुषोत्तम राम धनुषधारी राम के रूप में सामने आए।

जिस प्रकार लिखित रूप में रामायण की कथा अनेक रूप में पढ़ने को मिलती है, वैसे ही लोक-काव्य में भी रामायण आशिक्षित वर्गों में लोक-मानस की बहुरंगी वेशभूषा पहने हुए मिलती है। कुलुई समाज पर रामायण का जितना प्रभाव पड़ा है शायद उतना प्रभाव किसी अन्य धार्मिक ग्रन्थ का न पड़ा हो। यह बात लोगों की आम बोल चाल में रामायण से सम्बन्धित लोकोक्तियों, मुहावरों, लोक कथाओं, लोक-गीतों के बाहुल्य से स्पष्ट हो जाती है। मूल रामायण कुछ कथा रूप में और कुछ गीत रूप में मिलती है। कथा का सार एक ही गीत में दिया जाता है। सार एक ही गीत में दिया जाता है जो प्रायः आरम्भ में ही गाया जाता है।

दशरथा रे जोमें बेटे, राम जी,
तिन्हारे म्हारे चौमके घौरा।
दशरथा रे जोमें बेटे, राम जी,
घौरा जोमू सूना रा जौरा।
राखस सेभ नौशले भौगी,
दशरथा रे जोमें बेटे, राम जी,
लंका नौगरी लागली धौगी।

परन्तु कुलुई रामायण के अनेक स्थल लिखित रामायण से मेल नहीं खाते । उपर्युक्त विवरण के अनुसार यह स्वाभाविक भी है । जहां लिखित रामायण में, उस समय की परिस्थितियों के अनुसार कुछ सन्दर्भों पर विशेष जोर दिया गया है वहां कुलुई रामायण में यहां की परिस्थितियों के अनुकूल अनेक मोड़ आए हैं । यहां का समाज पूर्णतया कृषि प्रधान होने के फलस्वरूप सीता के जन्म को अनावृष्टि से सम्बन्ध करके एक लम्बे गीत में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें जनक के सोने का हल, चांदी का जुंगड़ा, कोधरे अर्थात् लाल रंग के बैल लेकर स्वयं हल चलाया । हल से एक संदूक भूमि में से निकला जिसमें सुन्दर युवती सीता निकली ।

जानका बे पोऊ हल चलाणा
आपूए बाहणा बेजा सजाणा
सूने री हौल रूपा री शांजी
रौतड़े बौल्द हौल चलाणा
प्रकट हुई सीतड़ा राणी
देशा न पोड़ला बरखा पाणी

कुल्लु देवताओं की भूमि है । लागों का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक जीवन इन्हीं देवी-देवताओं के गिर्द घूमता है । अतः राम की कथा को भी इन्हीं परिस्थितियों में स्थानीय पुट मिला है । राजा दशरथ के जब कोई पुत्र न हुए तो एक दिन जब वे उदास बैठें थे तो राजा इन्द्र देउ-टिब्बा अर्थात् इन्द्रासन से आए और उन्होंने बताया कि दशरथ को सकीरनी महादेव अर्थात् शृंगी ऋषि का श्राप है । ऋषि महाराज अन्न नहीं खाता यदि उन्हें अन्न खिलाया जाए तो राजा के घर सन्तान जरूर होगी । राजा ने अपनी अप्सराओं को यह कार्य सौंपा । उन्होंने सरयारा अन्न के लड्डू बनाए तथा वृक्षों पर लटका दिए । ऋषि फल फूलो को देखकर प्रसन्न हुए और धोखे में अन्न का लड्डू खा गए । उसी समय तभी राजा दशरथ हाथ जोड़ कर उपस्थित हुए और अपनी व्यथा सुनाई ऋषि ने उन्हें एक फल दिया कि वह रानियों को खिला दे । राजा ने फल कौशल्या को दिया । कौशल्या ने कैकयी को बुलाया और आधा फल उसे देकर जब खाने लगी तो सुमित्रा पहुंच गई । दोनों ने अपने-अपने आधे भाग काट कर सुमित्रा को फल के टुकड़े दिए । इस तरह कौशल्या के राम, कैकयी के भरत एक-२ पुत्र हुए और सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रुघन दो पुत्र हुए ।

इस प्रकार रामायण का कथानक परम्परागत होता हुआ भी कई सन्दर्भों में अपना स्वतन्त्र रूप लिए हुए है । स्वयम्बर के दिन सीता को उत्सुकता को कुलुई में बड़े मार्मिक शब्दों में दिखाया गया है :

सीता राणी बोल दी
उठा गुड़आलुओं द्वार पाठ खोला
राम जी आए हो, काहन जी आए हो,
उठा गुड़आलुओं द्वार पाठ खोला
कोई बे देणी आर्ती, कोई बे देणे धूपा जी,

राम जी आए
कुणी बे देणी आर्ती, कुणी बे धूपा जी
काहन जी आए हो,
जौसा रा एक-ए रंग, एक-ए रूपा जी
तिन्हा बे देणी आर्ती, धूपा जी।
होरा ता बाऊ मिला सी तौठिया भौरिया
लोहू नी मिलदा अपना जी
राम जी आए हो, काहन जी आए हो।

लोक विश्वास और स्थानीय विचारधारा के अनुकूल रामायण कथा में एक दूसरा परिवर्तन केकयी के बारे में है। पहाड़ों में राक्षसों के बारे में अनेक कथाएं हैं। वे मानव रूप धारण करके समाज में साधारण व्यक्ति की तरह आकर रहते हैं और साथ रहकर धोखे में धर्म का नाश करते हैं। स्थानीय परम्परा के अनुसार केकयी राक्षसों की धियायण अर्थात् दुहिता थी। श्रवण के मारे जाने पर जब नेत्रहीन माता-पिता ने प्राण दिए तो दशरथ को पुत्र वियोग में मरने का श्राप देकर इच्छा की थी कि उन्हें उस जगह जलाया जाए जो अनदागी हो। दशरथ को जब ऐसी कोई जगह न मिली तो राजा ने दाएं हाथ पर चिता जलाई और बाएं हाथ से आग लगाई। परन्तु राजा की छोटी उंगली जल गई। राजा कौशल्या और सुमित्रा के पास कई रात बार-बार गया पर लाख प्रयत्नों के बावजूद भी वे राजा को आराम न दिला सकीं। जब केकयी के पास गया तो रात को केकयी ने उंगली का सारा पीक-मवाद चूस लिया। राजा आराम से सो गया और जब राजा ने प्रसन्न होकर केकयी को मुंह-मांगा दान देने का वचन दिया तो केकयी ने भरत को राज और राम को चौदह वर्ष का वनवास मांगा।

अशिक्षित समाज में अन्धविश्वास, अच्छे-बुरे स्वप्नों, शकुन-अपशकुनों का प्रभाव बहुत अधिक रहता है, इस में कोई सन्देह नहीं। उनके गीतों और कथाओं में भी ऐसे आख्यानों का मार्मिक शब्दों में चित्रण मिलता है। कुलुई राम कथा में चित्रकूट में एक रात सीता को स्वप्न होता है जिसमें उसे पितर दिखाई देते हैं जो श्राद्ध मांगते हैं। यह अपशकुन था और किसी अनिष्ट घटना का द्योतक था। तभी राम उठते हैं उन्हें प्यास लगती है। परन्तु उस रात लक्ष्मण पानी को नहीं जाता और कहता है मैंने बारह वर्ष पानी ढोया है, आज सीता ही पानी लाएगी :

सीता ले सुपने मिले, सीता ले सुपन मिले
सुपने पितर मिले, सुपने पितर मिले
पितर मूंगे मसान शराधा
× × ×
बारह बौरश ढोऊ भाईया
मैं बावड़ीए पाणी
एबे आणली आपू, तेरीए सीतड़ा राणी।

और जब सीता पानी के लिए जाने लगती है तो गहन विचार में पड़ती है कि मैं कौन सा घड़ा ले जाऊं मिट्टी का घड़ा ले जाऊं तो लोग मुझे कुम्हारी समझेंगे और लोहे का ले जाऊं तो लुहारी :

जे हाऊं नेनू माटा रा घड़ोलू
लोके ता बुझले हाऊं सा कुम्हारी
जे हाऊं नेनू लोहा रा घड़ोलू
लोका बुझले जे हाऊं सा लुहारी
जे हाऊं नेनू पीतल घड़ोलू
लोका बुझले हाऊं सा ठठारी
जे हाऊं नेनू चांदी रा घड़ोलू
लोका बुझले हाऊं सा सनारी
जे हाऊं नेनू सूने री सनाणी
लोका बुझले बेढ़ा री राणी

ये सभी घटनाएं लोक-मानस के स्वाभिमान की द्योतक हैं। हमारा समाज इस प्रकार दर्जाबन्दी में बटा हुआ था जिस के बन्धन अब धीरे-धीरे टूट रहे हैं।

कुलुई रामायण को एक स्थानीय मोड़ तब मिला है जब राम और लक्ष्मण कुटिया पहुंचते हैं और सीता को वहां नहीं पाते। वे सीता की खोज में इकट्ठा तो निकल पड़ते हैं परन्तु राम के दिल में यह सन्देह रहता है कि हो न हो सीता को लक्ष्मण भगा कर ले गया है और उसे छुपा रखा है। रामायण में यह बात पहाड़ी क्षेत्र में देवर–भाभी के अनियमित सम्बन्धों की परिचायिका है, क्योंकि इस समाज में देवर–भाभी के ऐसे सम्बन्ध प्राय: हुआ करते हैं। तथा यह घटना बहुपतित्व प्रथा की छाप व्यक्त करती है। लक्ष्मण को भाई के इस सन्देह का आभास होता है और वह मार्ग में खाना बनाते हुए चुल्हे में केवल एक लकड़ी डाल कर आग जलाने का असफल प्रयत्न करने लगता है। राम ने उसके इस मूर्ख-प्रयास पर कहा, भाई क्यों व्यर्थ का प्रयास कर रहे हो एक लकड़ी से भी कभी आग जल सकती है ? तभी लक्ष्मण ने बात सम्भालते हुए कहा कि भाई मैं स्वयं यह बता रहा हूं कि "एकी डाले नी हुंदी औग एकी भाइए नी हुंदी लौज" जैसे एक लकड़ी से आग नहीं जलती वैसे ही एक भाई की लज्जा सब के लिए लाज है।

कुलुई में सबसे बड़ा स्वतन्त्र वर्णन उस समय का मिलता है जब राम सीता के वियोग में विलाप करते हुए सब पशु-पक्षियों और जड़-चेतन से सीता के बारे में पूछते हैं। स्थानीय अनुश्रुति के अनुसार हर भद्दा और कुरूप पशु-पक्षी और घास-वृक्ष इसलिए ऐसा है क्योंकि उसने राम की सहायता नहीं की है। कशांबल और कूजा में कांटे इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने राम और लक्ष्मण के मार्ग में बाधा डाली थी। जब कूजा-ल्हीसरी झाड़ी से राम ने पूछा कि तू ने सीता नहीं देखी है तो उसने उत्तर दिया था—

"तौ लागीदी सीतारी, मूं लागीदा बर्झणे री" तुझे सीता की चिंता लगी है मुझे बढ़ने की, तब रामचन्द्र जी ने श्राप दिया था कि जा "एतरी बर्झ जे तेरी मूली मूंड़ा-न लेड़ी तौड़े लागे"

अर्थात् तूं इतनी लम्बी हो कि तेरे पैर और सिर में दोनों ओर जड़ें हों। यही कारण है कि कूजा ल्हौसरी की लता आगे बढ़ती जाती है जमीन में धंस जाती है उसमें जड़ें लगती हैं और वह फिर आगे उगती है।

कुलुई समाज में दूब, दूर्बा घास को बड़ा पवित्र माना जाता है। पूजा के समय उसे काम में लाया जाता है। राम के कथानक के अनुसार जब सीता रोती और विलाप करती हुई ले जाई जा रही थी। तो दूब सीता के शरीर से लिपट गई और उसे रोकना चाहा। इस प्रयत्न में वह टूट गई। उस का शरीर तहसनहस हो गया और वह भूमि से उठ न सकी। साथ काइल-चील का वृक्ष खड़ा था जो यह सब कुछ तमाशा रूप में देखता रहा। जब पीछे से राम लक्ष्मण उधर से गुजरे तो दूब को भूमि पर कुचली तथा रोती हुई देखकर उन्होंने उससे कारण पूछा। जब रामचन्द्र को यह सब घटना मालूम हुई तो उन्होंने बरदान दिया कि तू सर्वदा हरी भरी रहे, उखाड़ने पर भी तू नष्ट न हो तथा तेरा वंश फलता-फूलता रहे और लोग तुझे पूजा के काम में लाए। साथ ही काइल-चील को श्राप दिया कि वियोग हृदय पर तुझे तरस नहीं आया अब तेरे शरीर में भी 'सेल्हार' अर्थात् बिरोजा हमेशा आग लगाता रहे।

कुल्लू दशहरा के तुरन्त पश्चात् गांव-गांव में 'हरण' नृत्य तथा नाटक चलते रहते हैं। यद्यपि 'हरण' का आरम्भ दशहरा के अन्तिम दिन की पूर्व सन्धया 'मुहल्ल' पर चन्द्रावली से होता है परन्तु हरण की प्रथा चन्द्रवली से नहीं मिलती। हरण में दो व्यक्तियों को आगे पीछे लड़ी में कदरे झुका देते हैं और उनके ऊपर चित्रित पट्टू डाल दिया जाता है। अगले व्यक्ति के सिर पर भांग की लकड़ी के सींग बनाए जाते हैं जिस पर फूल सजाए जाते हैं और पूर्ण रूप ठीक हिरण की तरह होता है। साथ में दो पुरुष एक स्त्री के लिबास में और दूसरा चोला टोपा लगाकर मर्द की पोशाक में नाचते हैं। निश्चित समय अन्तदाल पर मुखौटा पहन कर स्वांग करने वाले नाच रोक कर अपना अभिनय प्रस्तुत करते हैं। रामायण की कथा के अनुसार मारीचि के मरने की सूचना रावण को नहीं पहुंची थी। अतः बन्दर की सेना में से कुछ एक ने यह मरीचि हिरण का रूप धारण किया और लंका में उसका आगमन दिखाया जाता है। हनुमान इसमें स्वांग का पाठ करता था और इस बहाने ऐसे स्थानों पर भी जाया करता था जो अन्यथा गुप्त स्थान थे। इससे उन्होंने सीता को रावण की कैद अशोक वाटिका में खोज डाला था।

इस प्रकार कुलुई रामायण में अनेक ऐसे स्थल हैं जो मूल रामायण से सम्बन्ध नहीं रखते। कथा का ग्रन्थ रूप होते हुए भी स्थानीय परम्पराओं, विश्वासों और विचारधाराओं ने इसे निराला रूप प्रदान किया है।

सहज निवास २७,
शिमला–१७१००२

★●★

बिलासपुर में प्रचलित लोकोक्तियों का सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यांकन

डॉ० श्रीराम शर्मा

लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ है–'लोक' की 'उक्ति'। लोक में प्रचलित वह रूढ़ वाक्य जो संक्षिप्त, सारगर्भित, वक्र एवं किसी अनुभव को अभिव्यक्त करता हो, उसे लोकोक्ति कहा जाता है।

लोकोक्तियों का सीधा सम्बन्ध लोक मानस तथा लोक जीवन से रहा है। इनके माध्यम से किसी भाषा के बोलने वालों की संस्कृति का अध्ययन सुविधा पूर्वक किया जा सकता है, क्योंकि किसी स्थान विशेष की संस्कृति का पूर्ण प्रतिबिम्ब लोकोक्तियों में आसानी से प्राप्त हो जाता है। लोकोक्ति जीवन के मूल्यावान और ठोस अनुभवों पर आधारित सूक्ष्म अभिव्यक्ति होती है। इसे लोक मानस सदैव संजोकर रखता है और विरासत में आने वाली पीढ़ी को सौंप जाता है। बिलासपुर जनपद में प्रचलित एवं वर्ण्य विषय के आधार पर लोकोक्तियों का सरल एवं संक्षिप्त वर्गीकरण इस तरह से किया जा सकता है :

सामाजिक, स्वास्थ्य, कृषि एवं प्रकृति, भाग्य एवं नीतिपरक तथा अन्य लोकोक्तियां।

सामाजिक लोकोक्तियां :

सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्बन लोकोक्तियां समग्रता के साथ कहती है। बिलासपुर क्षेत्र में प्रचलित लोकोक्तियों में यहां के ग्राम्य एवं पर्वतीय लोक जीवन की झलक मिलती है। किसी भी समाज के रीती रिवाजों, प्रथाओं, खान-पान, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह, विभिन्न जातियों एवं आपसी ज्ञान व्यवहारों की यथार्थ झलक लोकोक्तियों द्वारा ही प्राप्त होती है। सामाजिक लोकोक्तियों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इनमें व्यक्ति, पुरुष, नारी, जाति, वर्ग, पेशा, सामाजिक व्यवहार एवं राजनैतिक विषय आ जाते हैं। हर जाति की अपनी चरित्रगत विशेषता होती है, जिसका उल्लेख कहावतों में प्रशंसा, व्यंग्य आदि के रूप में मिलता है। लोकोक्तियों में विभिन्न जातियों के स्वभाव, आचार-विचार एवं रीति-नीति का भी संकेत मिलता है। ब्राह्मण स्वभाव से ही अहंवादी होते हैं। वे अपने को विद्वान, चरित्रवान एवं पवित्र समझते हैं। बिलासपुर की लोकोक्तियों में उनकी मूर्खता, भिक्षावृत्ति, मिष्ठान्न प्रियता, दक्षिणा लिप्सा, ईर्ष्यालु एवं स्वार्थी प्रवृति का चित्रण मिलता है। ब्राह्मण, वैद्य एवं मसालची के विषय में एक लोकोक्ति प्रचलित है, जिसमें कहा गया है कि वे दूसरों को नैतिकता, उपचार एवं प्रकाश का मार्ग दिखाते हैं, जबकि स्वयं भ्रष्ट एवं अंधकारी मार्ग अपनाते हैं :

पडत, वैद, मसालची तिनों चत्तर कहांन,
लोकां जो दस्से चानण, अप्पूं न्हेरे जांह्ण।

काला ब्राह्मण एवं भूरे रंग का चमार स्वार्थी एवं धोखेबाज होता है :

काला बाह्मण, भूरा चमार, इनां रा नीं करो तबार ।

गद्दी, गुज्जर एवं लबाणा जातियों के लोग भी धूर्त्त एवं लालची होते हैं :

गद्दी, गुज्जर लबाणा, जित्त मिले तित दबाणा ।

बनिया जाति के लोगों की तुलना कौवे एवं कुत्ते से की गई है :

बणिये, कौं, कुत्ते रा, बसाह् नी करो सुत्ती रे रा ।

नाई जाति के लोग भी चतुर होते हैं । वे भी कौवों की तरह ही धूर्त्त होते हैं :

पंछियां च कौवा' आदमियां च नौवा ।

डूमण जाति के लोग ओछी प्रवृत्ति के होते हैं :

डूमणें रिया हंडिया भत्त, राति निंदर न दिने भक्ख ।

इसी तरह का एक और :

डूमणीं री नत्थ, कदीं नक्क, कदीं हत्थ ।

गुज्जर, अहीर और कंजर जाति के लोग भी स्वभाव से धूर्त्त एवं चलाक होते हैं । उनकी तुलना बिल्ली, बन्दर एवं कुत्ते से की गई है :

हीर, गुज्जर, कंजर, बिल्ली, बांदर कन्ने कुत्तं,
जे ये सब नीं होंदे तां बिना खिड़कियां ते सौंदे ।

लोक समाज में नारी के स्थान, स्वभाव एव उसकी स्थिति का बहुत कुछ पता लोकोक्तियों के माध्यम से प्राप्त हो जाता है । स्त्री का सब से बड़ा सौभाग्य उसका पुत्रवती होना माना गया है । पुत्रवती हो जाने पर वह सब दोषों से मुक्त हो जाती है :

दूधा री गायें, कन्ने पुत्ते री मावो, सबनां जो प्यारी लगदी ।

स्त्री को प्रायः बुद्धिहीन माना जाता है :

जनाना री अक्ल कन्ने मौह्सी रे सींग, पिच्छे खाह् जो ई होंदे ।

गुणहीन स्त्रियों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाली लोकोक्तियां इस प्रकार हैं :

१. शक्ल चडेलां री मजाज परियां रे ।
२. लींडी चिड़ी नांव कपूरी ।
३. नांवा री चौरी फूट्ट खाह्दी रा गाह्लिये ।

बातूनी स्त्री के चरित्र पर प्रकाश डालने वाली लोकोक्ति प्रस्तुत है :

धीउवे बरती हुंगा तां बरतेयां, पर गल्लें हार देख्यां खांदी ।

जो स्त्री काम तो कम करती है लेकिन नुकसान उससे अधिक कर डालती है, उससे सम्बन्धी एक लोकोक्ति प्रस्तुत है :

जितना का बूढ़िया कत्ति रख्या, उतना क बच्छुए चट्टी रख्या ।

गुण विहीन स्त्री के चरित्र पर प्रकाश डालने वाली लोकोक्ति इस प्रकार है :

ऐहड़ी हुंदी चज्जें चारें, तां कैंह् फिरदी लोकां रे द्वारे ।

कुलटा स्त्री के सम्बन्ध में भी अनेक लोकोक्तियां समाज में प्रचलित हैं। जो स्त्री अपने घर में नहीं रहना चाहती वह कई बहाने करती है :

जिसा रंडा जे घरें नीं बसणा से करां ई सौ ऊंघ।

कुलटा से सम्बन्धित एक और :

अग्ग बलदी रोटियां पकाई, रंड भनदी खसमें खाई।

कुलक्षणा आते जाते भी अनेक दुष्कर्म कर देती है :

कलच्छणी चलो तां सत्त घर हिल्लो।

अपने आप में गुण विहीन होने पर दूसरों को शिक्षा देने का काम करने वाली स्त्री के विषय में यह लोकोक्ति प्रचलित है :

अप्पूं कुड़ी सौह्रे नी जावे, दूज्जे जो सीसां देवे।

मां-बाप, भाई-बहन, पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, मां-पुत्र एवं मां-पुत्री आदि पारिवारिक सम्बन्धों को भी अनेक लोकोक्तियां चित्रित करती हैं। बाप का सम्बन्ध पुत्र से तब तक ही रहता है जब तक कि बेटे से कुछ आशा हो। मां का सम्बन्ध बेटे से आशा एवं निराशा के समय एक सा ही रहता है। बहन भाई से तब तक ही सम्बन्ध रखती है जब तक कि भाई बहन को कुछ न कुछ देता रहे। मैत्री का सम्बन्ध आदान-प्रदान से ऊपर होता है। मित्र एवं मां का सम्बन्ध पवित्र एवं शाश्वत माना गया है, जब कि पिता और बहन का सम्बन्ध लेन-देन तक ही होता है। लोकोक्ति प्रस्तुत है :

आसा रा बाप, नरासा री मां, हुन्दे री बहण, अनहोंदे रा मित्तर।

सौत भली हो सकती है लेकिन सौत का बेटा कभी भी सुख नहीं देता :

सौंकण भली, सकींडा बूरा।

मूर्ख पुत्र की अपेक्षा अंधी पुत्री अच्छी होती है :

उक्खल पुत्र न जाये माए, काणीं धीऊ चंगी।

यदि दामाद ससुराल से दूर रहे और कभी-कभी वहां आये तब उसका आदर सत्कार होता है। यदि दामाद अपने ससुर के घर रहे तब उसका थोड़ा भी आदर नहीं किया जाता। उससे गधे के बराबर का काम लिया जाता है :

दूरा रा जवांईं, जवांईं बराबर, नज़दीका रा जवांईं अद्हा,
घरा रा जवांईं गधे बराबर, जब मरजी तां लद्या।

मां-बाप से प्राप्त धन सब को अच्छा लगता है और किसी भी समय उसको प्राप्त करने की लालसा व्यक्ति में रहती है। लेकिन मां-बाप हर समय अच्छे नहीं लगते :

खाई प्यारी हुन्दी माई प्यारी नीं हुन्दी।

इस प्रकार की अन्य अनेक लोकोक्तियां हैं जो लोक जीवन में व्याप्त मानवीय सम्बन्धों पर प्रकाश डालती हैं। सामाजिक व्यवहार ज्ञान सम्बन्धी लोकोक्तियां से बिलासपुर की संस्कृति का आभास मिलता है। परम्परागत आचार-विचारों एवं व्यवहारों का ज्ञान इन्हीं के द्वारा होता है। लोक समाज के आचार-विचार इनके द्वारा अनुशासित होते हैं। बड़े-बूढ़ों का कहा प्रायः बुरा

लगता है लेकिन वह सच्चा होता है। उनके कथन की सच्चाई का पता बाद में लगता है। जिस तरह आंबला पहले खट्टा लगता है लेकिन बाद में खट्टास मिठास में परिवर्तित हो जाती है :

स्याणां रिया गलाईया रा कन्ने ग्रमलेयां रिया खट्टाईया रा
स्वाद बाद च याद ग्रावां।

पेट और घर को कभी भी बढ़ाना नहीं चाहिए। इससे किसी भी समय कठिनाई आ सकती है :

घर कन्ने पेट बड़े नीं हंगाणें चांहिदें।

दूसरों की बड़ी वस्तु से अपनी छोटी ही अच्छी होती है। जब चाहे उपयोग कर लो :

ग्रपणी भली काणी, स्यागा उठी हक्क पाणी।

दुष्ट व्यक्ति लाख घोटाले करके भी सफल नहीं होता।

भोले रे सोला, चन्दरे रे पन्दरा।

किसी व्यक्ति को लाभकारी काम करवाने के लिए लाया जाये लेकिन वह काम करने की बजाये उलटी हानि कर दे तो निम्न लोकोक्ति कही जाती है :

भेड ल्यांदी उना तईं, से घरा रिया कपाट्ट बी खाई गई।

दो बड़ी शक्तियों की लड़ाई के बीच पड़ने वाला तीसरा कमजोर व्यक्ति ही पिसा जाता है :

चोट्टेयाँ मिंहड्यां री लड़ाई, बराड़ां बुटडेयां री सफाई।

इस तरह से दो शक्तियों के बीच दुर्भाग्य से तीसरा आ जाये तो उसे हानि उठानी पड़ती है। अतः इस तरह की लड़ाइयों से दूर ही रहना चाहिए।

स्वास्थ्य सम्बन्धी लोकोक्तियां :

प्राचीन काल में ज्ञान, विज्ञान एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें बहुत कम उपलब्ध थीं। इसलिए स्वास्थ्य से सम्बन्धित संकेत लोकोक्तियों से प्राप्त किये जाते थे। भोजन, पानी, निन्द्रा आदि के सम्बन्ध में जो अनुभव समाज को प्राप्त हुए, वे ही स्वास्थ्य सम्बन्धी लोकोक्तियों के रूप में उपलब्ध हैं। ये लोकोक्तियां अधिकंशतः अभिधात्मक होती हैं। क्योंकि इनमें स्वास्थ्य से सम्बन्धित स्पष्ट संकेत मिलते हैं। आज भी इनके प्रति जनता में पूरा विश्वास पाया जाता है। मूली, ककड़ी, बैंगन एवं खट्टे की हानिकारक विशेषता से सम्बन्धित एक लोकोक्ति है :

मूल रोग मूली, ग्रद्धा रोग खट्टा,
सेर रोग काकड़ी, पाव रोग भट्ठा।

स्वस्थ रहने के लिए पौष्टिक भोजन करना आवश्यक है। खराब भोजन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। खराब भोजन खाने से तो भूखा रहना अच्छा होता है :

खाह्दे खाण कुखाण, तिसते भुक्खे खरे।

ठण्डे पानी से नहाने एवं ताजा भोजन करने से कोई बीमारी नहीं लगती :—

ठण्डे न्हावो, सज्जरा खावो, तिसरे घरा वैद नी जावो।

जो व्यक्ति अन्न खाना छोड़ देता है, उसे कमजोरी आ जाती है और वह शीघ्र ही प्राण त्याग देता है। अतः जीवित रहने के लिए अन्न खाना आवश्यक है :

ग्रन्न छूट्या, चिक्का रा घर छूट्या।

दूध पीने के पश्चात् पानी पीना हानिकारक होता है। अतः दूध पीने के पश्चात् पानी नहीं पीना चाहिए :

दूध पी के पाणी नी पीबो।

जिस समय पसीना आया हो, उस समय भी पानी नहीं पीना चाहिए :

पसीने च पाणीं नी पीणां चांहईदा।

खाली पेट भी पानी नहीं पीना चाहिए :

नीरणीयां च पाणीं नीं पीणां।

शुद्ध वायु के सेवन से अनेक बीमारियां दूर हो जाती हैं। शुद्ध हवा को सौ दवाईयों के बराबर बताया गया है :

सौं दवा, इक हवा।

इस तरह की अन्य अनेक लोकोक्तियां बिलासपुर के जन जीवन में प्रचलित हैं, जिनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी लोकानुभव भरे पड़े हैं, जिससे लोक जीवन लाभ उठाता है। वस्तुतः इस प्रकार की लोकोक्तियां स्वास्थ्य की आचार संहिता मानी जा सकती हैं :

कृषि एवं प्रकृति सम्बन्धी लोकोक्तियां :

बिलासपुर वासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि रहा है। आज भी कृषि कार्यों में प्रायः पशुओं का ही प्रयोग किया जाता है। यहां के जन जीवन में कृषि से सम्बन्धित अनेक लोकोक्तियां प्रचलित हैं जिनमें बोआई, गोड़ाई, निदाई, कटाई, खाद, बीज, वर्षा एवं बैलों की नसल से सम्बन्धित लोकोक्तियां मुख्य रूप से मिलती हैं। आज के वैज्ञानिक युग में तो यन्त्रों की सहायता से वर्षा, हवा, मौसम, चन्द्र एवं सूर्य ग्रहण तथा सूखे का पता लग जाता है। परन्तु ग्रामीण अपनी पैनी दृष्टि एवं सूक्ष्म अनुभव के आधार पर ही इन बातों का पता लगा लेते हैं। एक लोकोक्ति प्रस्तुत है, जिसमें कहा गया है कि कृषि व्यवसाय सबसे उत्तम है। व्यापार मध्यम श्रेणी का है तथा नौकरी निम्न कोटि का काम है। इसे केवल मंद बुद्धि वाले व्यक्ति ही करते हैं :

उत्तम खेती मधम बपार, नीच चाकरी करे गंवार।

खेती का काम देख-भाल से ही होता है। जिस खेती का काम मालिक स्वयं नहीं करता उसमें पैदावार अच्छी नहीं होती है :

खेती खसम सेती, जिसा खेतिया खसम नी जाम्रो,
सें खेती खसमा जो खाम्रों।

जिस तरह राज्य अच्छे एवं ताकतवर घोड़ों के बल पर चलता है उसी प्रकार खेती भी अच्छे बैलों से ही होती है :

खेती बलदां ने, राज घोड़यां ने।

खेतों में खाद डालना आवश्यक है, यदि खाद न डालें तो रेगिस्तान की तरह फसल पैदा ही नहीं होगी :

मैल सट्टो तां खेत नईं कूड़ा रेत।

फसल बुद्धवार को बोनी एवं शुक्रवार को काटनी चाहिए। कृषक व्यवहार में इस लोक-विश्वास का पालन भी किया जाता है :

बुद्ध बाह्णी, सुक्कर बह्डणीं।

जिस तरह दूसरों के हाथ व्यापार का काम नहीं दिया जा सकता है उसी प्रकार खेती का काम भी स्वयं ही करना चाहिए :

पर हत्थें बणज, स्नेहें खेतीं, कदीं नीं हुंदे।

यदि वर्षा आषाढ़ मास के प्रारम्भ में हो जाये और थोड़े समय के लिए मौसम साफ रहे तो फसल भरपूर होती है। यदि वर्षा आषाढ़ के अन्त में हो तो फसल अच्छी नहीं होती :

बरसया तीर तां हुये अमीर,
बरसया हाड़ा रा तीर तां हुए फकीर।

बिलासपुर में इस तरह की अन्य अनेक लोकोक्तियां प्रचलित हैं, जिनमें कृषि सम्बन्धी अनेक उपयोगी बातों का पता चलता है। इसके साथ ही प्राकृतिक शक्तियों जैसे—हवा, वर्षा, धूप आदि के ज्ञान से सम्बद्ध लोकानुभव भी लोकोक्तियों में प्राप्त होते हैं। इन शक्तियों का फसलों पर अच्छा एवं बुरा प्रभाव भी लोकोक्तियों द्वारा व्यक्त किया गया है।

भाग्य एवं नीति परक लोकोक्तियां :

यद्यपि ग्रामीण प्रायः आत्म विश्वासी और परिश्रमी होते हैं, फिर भी धर्म के प्रति आस्था एवं भाग्य के प्रति विश्वास भी उनमें होता है। भाग्यवादी दृष्टिकोण उनके जीवन को आशावादी और सरस बना देता है। भाग्य एवं नीतिपरक संस्कार उन्हें उत्तराधिकार के रूप में मिलते हैं। भाग्य सम्बन्धी लोक विश्वासों में अनेक शकुनों एवं अपशकुनों का उल्लेख मिलता है। लोक मान्यता के अनुसार मानव को हर वस्तु उसके भाग्यानुसार ही मिलती है। वैसे व्यक्ति चाहे लाख प्रयत्न करे, उसे असफलता ही मिलती है :

वाह रे भागां रेया बलिया, रिन्हीं खीर बणीं गया दलिया।

भाग्यहीन व्यक्ति यदि खेती करे तब या तो उसका बैल मर जायेगा या फिर सूखा पड़ेगा :

और करमा खेती करे, बलद मरे या सुक्का पड़े।

श्रावण मास में किसी का घर जल जाये, भरी हुई तम्बाकू की चिलम (कटोरी) गिर जाये या दूध देने वाली भैंस मर जाये तो उस व्यक्ति से भाग्यहीन कोई दूसरा नहीं होगा :

सौण महीने घर फूक्खो, भरी री चिलम पई जाओ,
माड़े दिन जाणनें, जे सूई री मैंह्स मरी जाओ।

लोकोक्तियों में लोक नीति एवं आचार-विचार का समावेश भी होता है। कुछ उदाहरणों से इसे आसानी से समझा जा सकता है। गंवार व्यक्ति का साथ कभी नहीं करना चाहिए। वह किसी समय भी मूर्खतापूर्ण कार्य कर सकता है :

गवारा रा साथ बुरा।

दुष्ट व्यक्ति का साथ और पहाड़ों की चोटियों पर धूप बहुत कम समय के लिए होती है। दुष्ट व्यक्ति का प्रेम अधिक दिन नहीं टिकता :

दुसटा रा साथ कन्नें धारा रियां धूपां, बड़ी देर नीं रैंहदियां।

जिस प्रकार कुत्ता गंगा में नहा कर पवित्र नहीं हो सकता उसी प्रकार पराया व्यक्ति भी साथ रह कर अपना नहीं बन सकता। पराया व्यक्ति कभी भी मित्र नहीं बन सकता। अतः उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए :

अपणां नीं नरापणां, पराया नीं हुन्दा मीत,
कुत्ते न्हाई गंगा सो नीं होया पवीत।

अपना व्यक्ति कभी भी हानि नहीं पहुंचाता। यदि वह भला नहीं कर सकेगा तो बुरा भी नहीं करेगा। अतः अपने सगे-सम्बन्धियों के प्रति प्रेम एवं आदर का भाव रखना चाहिए :

अपणां मारगा बी तां छांवां ई सट्टगा।

भाग्य एवं नीति परक लोकोक्तियों के विवेचन एवं विश्लेषण के पश्चात् कहा जा सकता है कि बिलासपुर वासी भाग्य में विश्वास रखते हैं। इसके साथ ही यहां की लोकोक्तियों में अनेक उपदेशात्मक तथ्य भी उपलब्ध होते हैं। इन से लोक मानस अपना मार्ग दर्शन करता है। ये लोकोक्तियां नैतिक-अनैतिक, अच्छे-बुरे एवं कर्तव्य-अकर्तव्य का भान कराती हैं।

अन्य लोकोक्तियां :

मानव जीवन के विविध पहलुओं से सम्बद्ध होने के कारण लोकोक्तियों को विषयानुक्रम से वर्गीकृत करना कठिन है। यहां पर उन लोकोक्तियों की चर्चा की जायेगी जो व्यापक लोकानुभवों पर आधारित हैं, किन्तु पीछे दिए गए वर्गों से उनका समावेश नहीं हो सका है। यहां पर विविध विषयों से सम्बद्ध लोकोक्तियों को प्रस्तुत किया जायेगा। जो व्यक्ति एक साथ दो घरों का अतिथि बनता है वह प्रायः भूखा ही रहता है। जिस तरह दो नावों पर पांव रखने वाला व्यक्ति हमेशा डूबता ही है। अतः व्यक्ति की सोचने की प्रक्रिया एवं कार्य प्रणाली स्पष्ट एवं साफ़ होनी चाहिए।

दू घरां रा परौह्णा भूखाई रैहयां।

घर में आये किसी भूले भटके को कभी बुरा नहीं कहना चाहिए। उसे भाई के समान समझना चाहिए :

घर आया भाई जाया समझो।

एक कदम का भूला हुआ व्यक्ति कई मीलों का फासला तय करने के पश्चात् उस कमी को पूरा कर पाता है। इस लिए उद्देश्य के साथ कार्य विधि के प्रति अधिक सचेत रहना चाहिए :

इक्की गईं रा भुल्लि रा, सौं कोहां रा फेरा पां।

थोड़े से लाभ के लिए अधिक हानि नहीं उठानी चाहिए। जूं को मारने के लिए कपड़े नहीं जलाने चाहिए। लोकोक्ति इस प्रकार है :

ज्यूवां पीछे खिदां नीं फूकणियां।

जो व्यक्ति सफलता प्राप्त करना चाहता है, वह कठोर परिश्रम से कभी नहीं डरता :

जिन्हां जे चढ़नी क्वाली, तिन्हां जौं क्या सुखाली।

मनुष्य को अपनी क्षमता एवं सामर्थ्य के अनुसार ही काम करना चाहिए। जितना बड़ा काम होता है, परिश्रम भी उसी अनुपात में करना चाहिए :

जिनें सुत्थण सियाई तिनें नाड़े जो बी जगा रखी।

हर व्यक्ति एव वस्तु का मूल्य समय पर ही होता है। हर काम सन्दर्भ के अनुसार ही होना चाहिए। जीते जी तो किसी को लाठियों से मारना और मर जाने पर जोर-जोर से रोने से क्या लाभ :

ज्यूंदे जो डांगां मुई रे जो बांगां।

मानव स्वभाव को चित्रित करने वाली एक लोकोक्ति प्रस्तुत है जिसका भाव है कि रूठना किसी पर और गुस्सा कहीं और निकलना। घर से रूठ कर जाना और जंगल में बेर खाने से इन्कार करना :

घरा रे रूस्सी रे बणा बैंर नी खाणें।

आत्म प्रशंसा हर व्यक्ति करता है। गिरगिट (एक कुरूप जानवर) भी अपने आपको अति सुन्दर मानती है, जबकि उसमें गुण एवं योग्यता नहीं होती :

अप्पूं जों तां गोह बी सरांहांई।

बड़ी मेहनत एवं परिश्रम से प्राप्त की गई वस्तु को भी लोग चालाकी एवं धूर्तता से हथिया लेते हैं। एक लोकोक्ति प्रस्तुत है, जिसमें कहा गया है कि रो पीट कर किसी वस्तु को प्राप्त किया और उसको भी चील कौवे उठाकर ले गए :

रोई पिट्टी खसम कित्या, सै बी इल्लें कांवे खाद्‌या।

इस तरह उपर्युक्त विविध वर्गों से सम्बन्धित लोकोक्तियों को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि लोक जीवन के विभिन्न अनुभवों को अत्यन्त प्रभावशाली ढ़ंग से लोकोक्तियां ही प्रस्तुत करती हैं। लोकोक्तियों को ग्रामीणों का नीति एवं आचार शास्त्र माना जाता है। किसी भी तथ्य की प्रामाणिकता की सबसे बड़ी कसौटी लोकोक्ति मानी जाती है। पापों, दुष्कर्मों, अकर्त्तव्यों, से चेतावनी, नारी का समाज में स्थान, नैतिक धारणाएं, लोक विश्वास एवं लोक संस्कृति के विविध पहलुओं का चित्रण लोकोक्तियों में हुआ है। लोक मानव का मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं व्यावहारिक क्षेत्र भी इनसे अछूता नहीं रहा है। साहित्यिक एवं भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी लोकोक्तियों का अपना विशिष्ट महत्व है। इनसे भाषा में सहजता, स्फूर्ति, एवं विशेष प्रकार की ताजगी एवं विश्वसनीयता आ जाती है। लोक गीतों की भांति ही लोकोक्तियों में भी कभी भी पुरानापन नहीं दिखाई देता।

हिन्दी विभाग'
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला–५

दशी

—पन्नालाल जोगटा

'दशी' एक लम्बे स्वर में लामण की भांति गाया जाने वाला गीत है। यह गीत शिमला के ऊपरी भागों विशेषकर रोहड़ू, रामपुर, जुब्बल, कोटखाई, चौपाल, कुमारसेन तथा कुल्लू जिले की निरमण्ड तथा अनी तहसीलों के विशू (चैत, वैशाख वाली संक्रांती) के बाद गाया जाता है। यह लम्बी लय वाला गाना विशेष कर जौ नामक अनाज को काटते समय गाया जाता है। महिलाएं दो टोलियों में अपने-अपने खेतों में जाकर जौ काटते समय समूह गान तथा प्रश्नोत्तर के रूप में इस गीत के शब्दों का आदान-प्रदान करती है। जौ काटने वाले शेष लोग तथा आगन्तुक गीत की लम्बी लय से मंत्र-मुग्ध होकर गीत के स्वरों को बड़े चाव से सुनते हैं। किसानों की फसलें काटने को तैयार हैं। लहलहाते खेत तथा इस गीत की लम्बी लय किसानों को अपनी फसलें काटने का आह्वान देती है। ऐसे सुअवसरों पर किसानों का प्रतिनिधित्व गांवों की भोली-भाली तथा सुन्दर बालाएं करती हैं और किसानों का प्रफूल्लित होकर झूमना स्वाभाविक है।

दशी नामक विवाहिता युवति इस लम्बे गीत की नायिका है। जिसका विवाह नारा नामक युवक से होता है। जीऊ नारा का भाई है। देवर होने के नाते जीऊ तथा दशी में मधुर-मधुर बातों का आदान-प्रदान होता है जो नारा को असहनीय होता है। वह एक दिन दोपहर के समय डांगरे (कुल्हाड़ी की भान्ति लोहे का बना हथियार) से जीऊ की हत्या कर देता है।

दशी किस समय गाई जाती है इसका उत्तर निम्न पंक्तियों में दिया गया है :

नाहीं गाये शावणा नाहीं गाये पौष की राचे,
भरा गाए जेठा दे जौश्रा ढले गीऊंश्रां दाचे।

उपरोक्त पंक्तियों में नायिका उत्तर देती है कि मुझे न तो श्रावण मास जैसे वर्षा वाले मौसम में गाया गया है और न ही पौष मास की पतझड़ तथा शरद ऋतु जैसे वीरान समय में ही गाया गया है। मुझे तो वैशाख, ज्येष्ठ जैसे बसन्त ऋतु के सुहावने मौसम में गाया गया है जबकि सारे खेतों में जौ तथा गेहूं की लहलहाती हुई फसलें लोगों का मन मोह लेती है।

दशी के जन्म के विषय में निम्न पक्तियां प्रकाश डालती हैं :

नगरा-नीरथा दशे कन्या जाए।
बारहा माशा मुंगड़े दशी खे बरने पाए।

दशी कन्या का जन्म रामपुर-बुशैहर तहसील के गांव नगर-नीरथ में हुआ तथा बारह माशे की मुंगड़ी नामक जेवर मंगनी के रूप में उसे भेंट किया गया।

दशी का बचपन किन कार्यों में बीता इसकी झलक निम्न पंक्तियों में है :

नगरा-नीरथा दशे लाए गुवाले।
कान्हें माथी लाखड़ों मुंडा माथी पाणी रे झारे।

नगर-नीरथ नामक गांव में दशी को गाय, बैल जंगल में चराने का कार्य सौंपा गया है। उसके कन्धे पर गाय, बैलों को हांकने के लिए लकड़ी की एक शाखा है। वर्षा के कारण दशी के सिर पर से वर्षा की धारा जमीन पर बह रही है, लेकिन वह इस सब की परवाह न करके अपने में ही खोई है। तन्मय होकर वह कूपू नामक पक्षी को गाने का आग्रह कर रही है और गाने के बाद उसकी मधुर आवाज दूर-दूर तक जाती है। नायिका चाहती है कि पक्षी तुम इतने जोर से गाओ कि आवाज बहुत दूर नरोल के राजा की रानियां भी सुन सकें जिसका आशय निम्न पंक्तियों में है :

भाषा कूपूआ दांता खोड़ारी शाणी।
देश शुणा मुल्का शुणा नरोला री राणी।
भाष डा कूपूआ डालीया पूरा मेके।
तेस खा माटीया जुणे दशे मँचा टेके।
कूपू माथो घुघते राजा रे राणे।
आछो किमी कूपूआ रीत बशँके आणे।
चीले रा शीकरा कूपूआ बाड़डा कोला।
जेठा आए बीरशे ए आए पन्द्रा सोला।

उक्त पंक्तियों में इस कहावत की पुष्टि होती है कि जंगल के सब पक्षियों ने अपनी एक गोष्ठी में पलाश नामक पक्षी को अपना राजा माना और सबने यह निर्णय लिया कि जब राजा बोलना आरम्भ करेगा तो सब पक्षी अण्डे डालेंगे। लेकिन पलाश ने सर्दी के पौष मास में बोलना शुरु किया। परिणाम स्वरूप सारे पक्षियों के अण्डे सर्दी के कारण नष्ट हो गए। तत्पश्चात राजा की पदवी से पलाश को हटा दिया गया और कूपू नामक पक्षी का राज्याभिषेक किया गया। कूपू ने वैशाख मास में बोलना शुरु किया। गर्मी की ऋतु होने के कारण सभी पक्षियों के अण्डे व्यर्थ नहीं गए तथा पक्षी अपने वंश को आगे बढ़ाने में सफल हुए। कूपू पक्षियों का मुखिया है तथा घूघती उसकी रानी है जिनको नायिका अपना प्रतिनिधी मानती है। नायिका कहती है कि कूपू ने बैशाख मास का सुहाना समय चुन कर बहुत अच्छा कार्य किया। कूपू के बोलने के साथ-साथ ही दशी के गीत गाने का तथा जौ काटने का सुहावना ऋतु अब आ गया है। कायल के पेड़ की चोटी पर कूपू ने अपना घौंसला बना दिया है तथा उसके स्वर के साथ ही ज्येष्ठ के १५-१६ गते की बीरशी नामक मेला भी आ गया है :

भाष ड़ा कूपूआ रई रांगली रणा,
दूरा री धैना ओंठीया दूसड़ू गणा।
कूपू घूघते का चींजणी चींजा,
एक खाए दालजा एक खाए जेठकी नींजा।

चीले रा टीऊँडा कूपू लागो कर्कयो,
राजों लागो डांडवो जों लागो माणछा खाँदो।

उपरोक्त पहली दो पंक्तियों में नायिका कूपू पक्षी को सम्बोधित करते हुए आग्रह करती है कि हे कूपू पक्षी! तू अपनी पूरी लय में ऊंचे स्वर में गा जिससे कि रई-कायल जैसे पेड़ों को चीरती हुई तेरी आवाज प्रतिध्वनित होकर दूर-दूर रहने वाली लड़कियों को कुछ आश्वस्त करे जो अपने मायके को आने के लिए अधीर हो उठी हैं तथा हाथ की अंगुलियों में मायके आने के दिन गिन रही हैं। तीसरी तथा चौथी पंक्तियों में नायिका कूपू तथा घूघती नामक पक्षियों के प्रेम में आदान-प्रदान को देखते हुए अधीर हो उठती है तथा प्रेम के नशे में उसे नींद आने लगती है।

अन्तिम पंक्तियों में नायिका कूपू पक्षी के लगातार कर्कश स्वर से खीझ कर कहती है कि अब तू अपना गाना बन्द कर दे। तेरा बार-बार कर्कश स्वर तो अब अशुभ लग रहा है। अगर तू अपनी आवाज बन्द नहीं करता है तो सम्भव है राजा अपनी प्रजा को दण्डित कर दे या यमराज मनुष्यों को निगलना शुरु करें।

बसन्त ऋतु का सुहाना मौसम है तथा चारों ओर फूल खिले हैं। नायिका उन फूलों को प्राप्त करने के लिए अधीर हो उठती है तथा अपने देवर जीऊ को कूजा नामक फूल की दो मालाएं लाने का आग्रह करती है। उसका देवर कहता है कि कूजे के फूल की दो मालाओं के बदले चार मालाएं भी ला सकता हूं परन्तु उसके फूल लाकर नायिका को देने से भाई नारा ईर्ष्या से जल उठेगा। प्रत्युतर में दशी कहती है कि अगर तेरा भाई फूलों के लिए रुष्ठ होता है तो रूठने दे क्योंकि कूजे का फूल किसी के प्रेम के प्रतीक के रूप में नहीं बल्कि मैं सुगन्ध तथा शोभा के लिए मंगवा रही हूं। देवर भाभी के उत्तर प्रत्युतर का सुन्दर संवाद निम्न पंक्तियों में दिया गया है :

कूजो मेगे बुहणों सोरा बारासा रो दाए,
बास खाओ कूजेआ हों छाड़ो ने ढोकड़ू पाए।
हूं दीआ नेवला कूए फूलूए धुए,
मुखे आणा जीऊआ कूजारी शीरी दुए।
दुई नाहीं आणू लो दुई का आणु लो चारा।
लाणे न देआ लो एओ बोलिया रोशिमा नारा।
नारा रे रोशिणे नारा रो कुछ न खाओ,
कूजा रो फूलड़ू एओं मोएं बासा खे लाओ।

जब दशी का देवर कूजे के फूल की माला लाकर दशी को देता है तो वह प्रफुल्लित होकर फूलों के हार को घर लाती है तथा घर के अन्दर उसे टांग लेती है। उसका ससुर फूलों को देखकर प्रसन्न होकर पूछता है कि ये फूलों की माला कौन सी बहू लाई है। साथ ही वह फूलों को सूखने की आशंका से अपनी बहू को अवगत करवाता है :

इणो लागो बोलदो दशी रो शेवरी शाणो।
कूजा रो फूलड़ू एओ केजी बहुआ आणो।

इणों लागी बोलदी दशी रो शेवरी शूपो।
कूजा रो फूलड़ू एग्रो बहुग्रा खीलीग्रा शूकों।

जौ का रंग बदल गया है और गेहूं का सील (पौधे के चोटी वाला हिस्सा जहां दाने लगते हैं) लाल होने लगा है। अत: जौ, गेहूं की फसल काटने का समय आ गया है। दशी अपने पति तथा देवर को फसल काटने केलिए तैयार करती है। घर के पास वे जौ की फसल काटने के लिए चल पड़ते हैं। दशी का पति सुझाव देता है कि अभी जौ न काटकर गेहूं काटते हैं ताकि उसके स्वादिष्ट बटांडे बन सकें :

जौ लोंई बाबरा गींहू लोंई रातीग्रा कीशा
पाणे ग्राण सालेग्रा बालो मुंग्रों शाटू चीशा।
चालड़ा नारेग्रा ग्रामा लोंई ले गीहू
जौग्रां लौणा बाग ग्राए ढालणे सींऊ।
जौ चाले लोंदे घरा पोरुई सेरी
टोपू लाग्रो ठासेग्रा शाख शोंग्राँ लाम्बीग्रा केरे।
जौ न लौणा जौग्रा रा पूरा चूटा जुवांडा
गीऊं लोंई दशीया तैरा पाणी बाटांडा।

फसल काटने का कार्य आरम्भ होता है। जौ काटते-काटते नायिका की कमर में दर्द हो जाता है। उसका देवर अपनी पगड़ी उतार कर अपनी भाभी को देकर कहता है कि इससे कमर कस कर बांध ले ताकि कमर दर्द न करे। वह अपने पति को कहती है कि तुम तो आयु में मेरे से बहुत बड़े हो और मैं अबोध बालिका हूं और तीव्र सूर्य की किरणों से मेरे पांव में जलन हो रही है तथा पांव के तलवे में बैई (दरारें) पड़ गई हैं। अत: मेरे कोमल पद में किसी द्रव्य पदार्थ की मालिश करनी पड़ेगी :

जौ लौएग्रा चीड़े बोला चुटा ले तेरे
पाग बटोला रे गाचे बाँमा पालजू मेरे।
तू सा बूढड़ो हों सा बालका दशे
बाल बायणा मेरा नाहीं बलणा छशे।

जौ काटते-काटते दोपहर हो गई है। नायिका का पति जो कुछ समय पूर्व घर चला जाता है आवाज देकर दशी को कहता है कि दोपहर हो चला है तथा घर में गाय को दूहने का समय हो गया है और बछड़े भूख से व्याकुल हो रहे हैं इस लिए घर आ जा। उत्तर में नायिका मना कर कहती है कि मेरा दिल तो खेत में ही लग गया है। मैं तो घास की एक कुटिया बना कर खेत में ही रहना चाहती हूं क्योंकि घर में आकर तुम्हारी मां मेरे साथ झगड़ती है :

खरा दपारा माखीग्रा देड़े बेला
घरा ग्रा दशीया गाग्रो तेरा बाशटू लेरा।

गाश्रो दे लेरने बाशटू लेरा ला तेरा
घरा नाहीं श्रांदे घरा पड़ा बडड़े वेरा ।
घरा नाहीं श्रांदे घरा खे पीटीश्रा बूढ़े
एथी रौंऊं ढोखरी एथी पाँऊं कांशा रे कुढ़े ।

जौ काट के समाप्त हो जाते हैं लेकिन नायिका को सूना खेत देख कर बहुत दुःख होता है । जौ काटने वाली दम्पति के स्वागत के लिए नायिका को पालकी तथा नायक को घोड़ा भेजा जाता है लेकिन नायिका इनको यह कह कर वापिस भेज देती है कि इसकी आवश्यकता नहीं है तथा दोनों पति-पत्नी पैदल ही साथ-साथ आयेंगे :

जौ तो लौएया शूनो धिशा बगोड़ो
दशी के पलगे नारा के शांवलो घोड़ो ।
नाईं जाँदे पलगे नाईं जाँदो शाँवलो घोड़ो
देशी हाँड़ा श्राफणी ए बोली जामका जोड़ा ।

जौ काटने वाला दल घर पहुंच जाता है तथा फसल भी काट कर घर लाई जाती है लेकिन नारे को अपनी पत्नी दशी के साथ अपने भाई का हंसी-मजाक नहीं भाता है और वह रूठ कर घर से चला जाता है। दशी बरामदे में लाल रंग का फूल लगाकर उसे मनाने आती है । उसी समय नायिका की सास उसे समझा कर कहती है कि तू मेरे छोटे बेटे से व्यंग्य-विनोद न किया कर क्योंकि इससे तेरे पति को ईर्ष्या होती है । वैसे भी पुरुष स्त्रियों का बहुत सुनते हैं ऐसा न हो कि मेरे दोनों पुत्र तेरे कारण आपस में लड़कर अपनी जान गंवा बैठें :

नारा रा रूशीणा बड़े श्राणडे घाए
तोगा निकला दशीश्रा राता फूलड़ू लाए ।
सुना रो दीसरू जुब्ला पाणो बाँधो
रीश्रा हौश्रा मरदा शीगा लागा दूजी री धाँदा ।
दशी भवारीश्रा हौटें जा बहुश्रा हौटे
तेरा मरेश्रोंणा दुई मेरा पुत्रा त्रोटे ।

फसल तो काटकर घर में आ गई अब जौ को खलीहान में लाकर उसमें बैल डाले जा रहे हैं ताकि उसके दाने निकाले जा सकें । नायिका खूजी-भाजी बैलों को सम्बोन्धित करके कहती है कि तुम आज खलिहान में अपने खूब करतब दिखा लो । वहां भी नायिका तथा उसके देवर में हंसी-मजाक का आदान-प्रदान होता है । नायक सोचता है कि उसका भाई दशी का सीता की भांति हरण कर लेगा । निम्न पंक्तियों द्वारा उसकी व्याकुलता का वर्णन किया गया है :

जौश्रा जरीड़कू भेंखले ऊंची ले तेला
भाजीश्रा बल्दा श्राछो करा खला रों खेला ।
खुजीश्रा बल्दा तेरां काराँगलू शींगा
रीश लागे दशी रे श्राखी रा भोउटू रींगा ।

सीऊं सलाईया सीऊं हों आपणे जाँणू
मना री फारशी ईऊ हों किदरे जाँणू।
खुजीआ बल्दा भाजीआ नैंहा कदारा
लाँका जले नगरे सीआ नोहें रामा रौ हारा।
लाँका री धारा दे हणूआ कोंदरे लाए
सीआ भागी रामा रे बेड़ा हेरा मंहला पाए।

दशी का पति ईर्ष्या के मारे अपने भाई को डांगरे से काटकर मार डालने का संकल्प करता है तथा डांगरे की धार को तेज करने के लिए लच्छरू नामक लुहार के पास जाता है। घण और शणेंई आदि औजार जो लोहे के बर्तनों को बनाते समय प्रयोग में लाए जाते हैं से लुहार का समस्त आरन (घर) गूंज उठता है। दशी के पूछने पर लुहार उत्तर देता है कि तुम्हारा पति नारा द्रातियां खिलने इत्यादि खेतों के अन्य औजारो को बनाने के साथ-साथ अपने डांगरे की धार भी तेज कर रहा है। जब नायिका लुहार के आरण में आकर पति के हाथ डांगरे को देखती है तो उसे सन्देह के कारण डांगरे पर लाल रेखा सी दीखती है। वह अपने पति को चेतावनी देकर कहती है कि उसे डांगरे में अपने देवर का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है। वह आवेश में आकर कहीं अपने भाई की हत्या न कर दे :

पूंगा लछरुआ तेरा आरना कूंणा
घणा शणेंईयाँ सारो आरना दूणा।
मेरा आरना एओ हौलो नारा मुआणा
दाची चाणा चिखड़ी साथी देआ डांगरु पाणा।
नारा रा डाँगरा राते पड़े ला शीशा
आल करा न नारेआ तेरो भाये जिऊ मुखे धीशा।

नायक नायिका को जंजे (छोटी चक्की) में जो पीसने के लिए कहता है और स्वयं डांगरे से अपने भाई की हत्या कर लेता है तथा रक्त-रंजित डांगरे को तीरी (खिड़की) के रास्ते नायिका को दिखाता है। नायिका नारे को फटकारते हुए तथा कोढ़ी की संज्ञा देते हुए कहती है कि तुमने अपने भाई की हत्या कर एक बहुत बड़ा कुकृत्य किया है। जब गांव में शोर-गुल होता है तो ग्रामवासी जीऊ की हत्या का षडयन्त्र भांप जाते हैं तथा इस दुर्घटना का दशी पर दोषारोपण करते हैं। गीत का समापन निम्न मार्मिक शब्दों में निहित है :

खरा दपारा दशीआ पीशणों लाओ
तीरी बीटी नारेया लोहू भौरो डाँगरु पाओं।
नारेया पापीया तेरे कोढ़ी रो ही यो
भाए भाँगो आपणो मेरो का दशी रो कीयो।
पार बटाड़िया का बाजणी बाजा
के जले मास्ते के खड़ुआ राजा।
नाई जले मास्ते नाई खड़ुआ राजा
दुई भाई पीटुआ ए दुई दशी री गाजा।

निदेशालय उद्यान विभाग हिमाचल प्रदेश,
नौबहार, शिमला – १७१ ००२।

नाहन में महाकाली का पदार्पण

—मदन मोहन 'कमल'

हिमाचल प्रदेश के नाहन नगर के पूर्वी भाग में कालीस्थान नामक महाकाली का मन्दिर है, जिसमें भगवती महाकाली की दो पिंडियां एक बड़े और एक छोटे मन्दिर में हैं, और उनके अलावा भगवान शंकर, भगवती दुर्गा तथा भगवान शंकर के मानस पुत्र भैरव बली के मन्दिर है और एक विशाल चबूतरे पर वट वृक्ष के नीचे हनुमान, गणेश आदि की मूर्तियां हैं।

विभिन्न इतिहासकारों के मतानुसार सिरमौर के राजा विजयप्रकाश का विवाह कुमायूं के शासक कल्याणचन्द की पुत्री के साथ हुआ है, जिसका नाम ज्ञात नहीं है, क्योंकि सिरमौर के राजवंश की किसी रानी, राजकुमारी (सिवाय राजमाता मदालसादेवी तथा उनके पुत्र महाराजा राजेन्द्रप्रकाश की दोनों रानियों के) के नाम किसी भी ऐतिहासिक पुस्तक में उपलब्ध नहीं है।

नव-विवाहिता रानी भगवती महाकाली की अनन्य उपासिका थीं और ननिहाल से महाकाली की मूर्ति (पिंडी) अपने साथ लाई थीं। कहा जाता है कि एक रात राजा को स्वप्न में एक छोटी-सी बालिका अन्त:पुर में घूमती दिखाई दी। राजा ने अपने स्वप्न के मध्य ही उस बालिका से पूछा, "हे कन्या, तू कौन है, कहां से आई है और क्या चाहती है?" इस पर कन्या ने कहा, "मैं कुमायूं से राजकुमारी के साथ आई हूं। तुम तो विवाहिता राजकुमारी के साथ विवाह-सुख में आनन्दमग्न हो, पर मेरे लिए भी रहने का कोई प्रबन्ध किया है?" राजा ने फिर पूछा, "तू है कौन, यह तो बता!" तब बालिका बोली, "मुझे जानने के लिए ज्ञान-नेत्र चाहिए, जो शायद तुम्हारे पास नहीं है। तुम्हारी रानी मेरी उपासिका है, यही समझ लो। अब तुम्हें मेरे लिए मन्दिर का निर्माण कर देना चाहिए, क्योंकि मैं अपनी अनन्य उपासिका इस रानी को नहीं छोड़ सकती, जिसने अपना तन-मन मुझे अर्पित कर दिया है। वैसे तो मैं निराकार रूप में सर्वत्र व्याप्त हूं, किन्तु राजकुमारी मेरे साकार रूप की नियमित रूप से विधिपूर्वक आराधना कर सके, इस उद्देश्य से मेरे देवालय का का निर्माण करना तुम्हारा कर्तव्य है।"

राजा जानते थे कि उनकी प्रिय पत्नी भगवती महाकाली की उपासिका है और महाकाली कूर्मांचल प्रदेश की अधिष्ठात्री देवी है। उन्होंने कन्या के चरण पकड़ लिये और गद्‌गद् वाणी में भाव-विभोर होकर बोले, "मां, महामाया, मैं राजमद और धनमद से चूर कलियुगी जीव तुम्हारी महिमा को कैसे जान सकता था। मेरा जन्म-जन्मान्तर धन्य होगया जो भगवती के दर्शन हुए। मैं प्रात:काल ही आपके लिए भव्य मन्दिर के निर्माण का आयोजन करूंगा।" कन्या रूपिणी महाकाली बोलीं, "राजन्, तुम्हारा कल्याण हो!" यह कह कर वह कन्या वहीं अन्तर्ध्यान हो गई।

प्रातःकाल उठ कर राजा ने अपना स्वप्न रानी को सुना कर कहा, "प्रिये, तुम जैसी पत्नी को पाकर मेरा जन्म सफल हुआ जिसके कारण मुझे भगवती महाकाली के दर्शन हुए।" इसके बाद राजा विजयप्रकाश ने अनुभवी कलाकारों द्वारा अपनी देखरेख में सम्वत् १८८७ में मन्दिर का निर्माण कराया, और फिर उसमें रानी द्वारा लाई गई महाकाली की मूर्ति विधिवत् स्थापित की गई।

कालीस्थान में दूसरा मन्दिर भगवान महादेव का है जिसे महन्त ज्वालानाथ जी ने बनवाया। उससे आगे हनुमान जी की छोटी सी मूर्ति और झण्डा है जोकि नाथ-सम्प्रदाय के किसी महात्मा का बनाया हुआ है। तत्पश्चात् भगवती दुर्गा का मन्दिर है जिसे राजा फतेहप्रकाश ने बनवाया। उससे आगे भगवान शिव के मानस पुत्र भैरव बली का मन्दिर है जो कि राजा रघुवीरप्रकाश ने बनवाया था। उससे आगे एक विशाल चबूतरा है जिस पर राजाओं के शासन-काल में दशहरे से पहले दिन दुर्गानवमी को राजदरबार लगा करता था। चबूतरे के मध्य में एक विशाल वट-वृक्ष है जिसके चारों ओर एक गोल चबूतरा है और उस पर हनुमान, गणेश आदि की मूर्तियां हैं। नीचे वाले चबूतरे के प्रवेश-स्थान की सीढ़ियों के साथ एक महाकाली का छोटा-सा मन्दिर और है जो कि नाथ-साम्प्रदाय के किसी महात्मा की समाधि कही जाती है। इसमें लोहे के तसले के नीचे महाकाली को कीलकमन्त्र द्वारा कीलित करके स्थापित किया हुआ है। कहा जाता है कि यदि कोई अन्य दैवीय व्यक्ति इसे तसले को हिला दे तो नगर में महामारी या कोई प्रकोप छाता है जिससे धन-जन की काफी हानी होती है। ऐसी घटनाएं राजा सुरेन्द्रविक्रम प्रकाश व अमरप्रकाश के शासनकाल में प्लेग आदि के फैलने की बड़े बूढ़ों से सुनी गई हैं जो कि रोंगटें खड़े कर देने वाली है। दरबारा का चबूतरा पहले छोटा होता था, पर बाद में राजा सुरेन्द्रविक्रम प्रकाश ने बड़ा बनवा दिया था।

इसके अलावा मन्दिर के प्रांगण के उत्तर की ओर मन्दिर के सर्व प्रथम महन्त भृंगनाथ की समाधि है जोकि मन्दिर के मुख्य द्वार के साथ ही है। उसके साथ एक नव-निर्मित कमरा और फिर हवन-गृह है। मन्दिरों के पीछे दक्षिण की ओर मन्दिर के अन्य महन्तों की समाधियां हैं।

इस मन्दिर का महन्त, जोकि नाथ-सम्प्रदाय से सम्बन्धित होता था, राजगुरु की उपाधि से विभूषित होता था और सिरमौर का प्रत्येक शासक प्रतिवर्ष विजयदशमी के अवसर पर इस मन्दिर में पूर्ण राज-वैभव सहित आकर महन्त को श्रद्धा-सुमन अर्पित करता और अपने जीवन को धन्य समझता था। मन्दिर के महन्तों का काम इस प्रकार है :—

सर्वप्रथम महन्त भृंगनाथ, फिर क्रमशः आत्मनाथ, तूपनाथ, ज्वालानाथ, बीरनाथ, देवीनाथ, जगन्नाथ। जगन्नाथ के शिष्य निमेनाथ जी कायममुकाम के रूप में कुछ समय तक महन्त का कार्य करते रहे पर कुछ असावधान और क्रोधी स्वभाव होने के कारण राजा सुरेन्द्रविक्रमप्रकाश ने उन्हें महन्त न बनाकर पुजारी नियुक्त किया और एक अन्य शाक्त महात्मा मोतीनाथ (मुक्तिनाथ) को, जो कि संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे और विरक्त स्वभाव के थे, संवत् १९६५ में मन्दिर का महन्त नियुक्त किया। इस पर लोगों ने शुरू में विरोध किया, पर बाद में महात्मा मुक्तिनाथ के गुणों को देखकर विरोधियों ने भी राजा सुरेन्द्रविक्रमप्रकाश के चयन की सराहना की। आजकल उनके शिष्य महात्मा दयालुनाथ जी इस मन्दिर के महन्त हैं, जोकि एक सच्चे योगी, विद्वान व त्यागी हैं।

इस मन्दिर के एक भाग में हिमाचल प्रदेश भाषा एवं संस्कृति विभाग के तत्वावधान में एक संस्कृत महाविद्यालय चल रहा है और इसके प्रधानाचार्य भी मन्दिर के महन्त श्री दयालुनाथ जी ही हैं, जिनकी देखरेख में यह कालेज सुचारु रूप से चल रहा है।

देश के अन्य शाक्त साम्प्रदाय के मन्दिरों की भान्ति इस मन्दिर में भी चैत्र व अश्विन के नवरात्रों में नगर के हजारों श्रद्धालु भक्त भगवती महाकाली के चरणों में श्रद्धासुमन अर्पित करने हेतु उमड़ पड़ते हैं और धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति करके अपने जीवन को धन्य करते हैं।

'कमल-निकुंज', निकट जैन मन्दिर,
नाहन (हिमाचल प्रदेश)

महासू परिवार में देवता बनाड़

—ध्यानसिंह भागटा

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में शैव तथा वैष्णव प्रभाव देखने को मिलता है। शिमला के ऊपरी भाग अर्थात् महासुवी क्षेत्र में शिव तथा विष्णु दोनों से सम्बन्धित देवी-देवताओं का प्रभाव लक्षित होता है। इसी परम्परा के अन्तर्गत शिमला के जुब्बल क्षेत्र में 'देवता बनाड़' हजारों लोगों की आस्था तथा श्रद्धा का प्रमुख स्तम्भ के रूप में उल्लेखनीय है।

देवता बनाड़ की उत्पत्ति सम्बन्धी गाथा अनेकों अन्य देवी-देवताओं की उत्पत्ति विषयक गाथा की भांति ही अत्यन्त रोचक तथा विचित्र है। 'देवता बनाड़' का सम्बन्ध 'महासू भाइयों' से जोड़ा जाता है जिनका जन्म तथा निवास स्थान काश्मीर माना जाता है। महासू देवता पांच भाई माने जाते हैं जो बौठा महासू, चाल्दा महासू, कौलू, शेड कुलिया, बनाड़ आदि नाम से आज भी जाने जाते हैं।

यह प्रसिद्ध है कि महेन्द्रथ (महासू देवता का वर्तमान मुख्यवास) नामक स्थान में राक्षसों ने आतंक का वातावरण उत्पन्न कर रखा था। वहां के लोग उनके अत्याचारों से तंग थे तथा इस विपत्ति से छुटकारा पाने का कोई साधन खोज रहे थे। यहां प्रमुख व्यक्ति पंडित 'हूणा' को किसी महात्मा ने राय दी कि यदि वह काश्मीर जाकर महासू देवताओं से प्रार्थना करे तो वे राक्षसों का संहार करके इस क्षेत्र में शांति स्थापित कर सकते हैं। हूणा पण्डित काफी कठोर तथा लम्बी यात्रा तय करके काश्मीर पहुंचा तथा महासू भाइयों के देवस्थान के बाहर खड़ा हो गया।

इस समय पांचों भाई महासू कई प्रकार के खेल खेलने में व्यस्त थे अचानक ही उन्हें मानव गन्ध का आभास हुआ तथा उन्होंने अपने सबसे छोटे भाई 'कौलू' को यह देखने के लिए बाहर भेजा कि इस पवित्र तथा वर्जित स्थान पर आने का दुस्साहस किसने किया है। 'कौलू देवता' के मन्दिर से बाहर आते ही हूणा पण्डित ने बड़े ही दीन-हीन भाव से प्रार्थना की कि वह राक्षसों के अत्याचारों से बहुत दुःखी है तथा उनसे छुटकारा पाने के लिए यहां आया है। पहले तो कौलू देवता ने अत्याधिक क्रोध से उसे उस स्थान से चले जाने को कहा किन्तु हूणा ने नतमस्तक प्रार्थना की कि :—

देना बोलू कौलूआ ज्यादा पोओ न रौलो।
ताऊंबे देऊ ला कौलूआ नैंवा जुणा रो पौलो॥

इस प्रकार हूणा द्वारा कौलू को विशेष उपहार प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् कौलू मान गया तथा उसे हवन के पश्चात् फैंकी गई राख की ढेरी के नीचे छिपा लिया ताकि वह वहां सुरक्षित रह सके। कौलू ने उसे विश्वास दिलाया कि वह उसके दुःख के निवारण हेतु कुछ युक्ति अवश्य करेगा।

कौलू देवता ने महल में जाकर सूचना दी की बाहर कोई भी मनुष्य नहीं है। अन्य भाइयों को उस पर विश्वास नहीं आया उन्होंने इस बात की पुष्टि करने के लिए अपने दूसरे भाई 'शेड़कुलिया' को महल से बाहर भेजा देवता 'शेड़कुलिया' सीटी बजाता हुआ बाहर आया तथा चारों ओर भली-भांति खोजने पर भी उसे कोई मानव नजर नहीं आया। अन्दर जाकर उसने भाइयों को कह दिया कि बाहर कोई भी मानव नहीं है।

इसी प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ। प्राचीन परम्परानुसार पांचों भाई अपने-अपने रथ पर सुसज्जित होकर भाद्र मास की चौथ के पूजन के अवसर पर अपने देवालय से बाहर आया करते थे। प्रतिवर्ष की भांति चौथ का समय आ गया तथा पांचों भाई महासू अपने-अपने रथ पर आसीन होकर पूजन के लिए बाहर आने लगे। मुख्य द्वार पर आते ही फिर वही मानव गन्ध उन्हें अनुभव हुई तथा उनके रथ आगे बढ़ने की अपेक्षा पीछे हटने लगे। रथों की यह दशा देखकर कौलू को सन्देह हुआ कि यदि रथ बाहर न गए तो ब्राह्मण का उद्धार नहीं हो सकेगा। उसने गुस्से में आकर सभी रथों को बलपूर्वक मुख्यद्वार से बाहर धकेल दिया। रथों के मन्दिर से बाहर आते ही उसने अपने गज (लोहे की एक लम्बी तथा मजबूत छड़) द्वारा राख हटाई तथा हूणा पंडित को उसमें से बाहर निकाल लिया। ब्राह्मण रोता चिल्लाता हुआ पांचों भाइयों के चरणों पर गिर गया तथा उनसे अपनी रक्षा की याचना करने लगा। देवताओं को उस पर दया आई तथा उन्होंने उसे रक्षा का वचन दे दिया।

महासू बन्धुओं ने हूणा पण्डित को फूलों की एक कड्डी (टोकरी) दी तथा कौलू ने अपनी दैवी शक्ति द्वारा पण्डित को क्षण भर में ही महेन्द्रथ पहुंचा दिया। जाने से पूर्व देवताओं ने पण्डित को यह निर्देश दिया कि घर पहुंचते ही तुम नवजात बन्धुओं को सोने के हल में जोतना तथा जिस खेत में तुम हल जोतोगे हम वहां स्वयंमेव ही प्रकट हो जाएंगे। पण्डित ने ऐसा ही किया तथा इस प्रकार देवताओं की उत्पति महेन्द्रथ में हो गई। उत्पति के तुरन्त पश्चात उन्होंने राक्षसों का संहार किया तथा शांति स्थापित करके महेन्द्रथ ही नहीं अपितु दूरस्थ स्थानों तक अपना प्रभाव तथा अधिपत्य स्थापित कर लिया। कालान्तर में पांचों भाइयों में विभाजन हुआ तथा प्रत्येक इस प्रकार प्रत्येक देवता अपने-अपने क्षेत्र का स्वतन्त्र स्वामी बन गया।

'देवता बनाड़' के हिस्से में 'खूनीगाड' क्षेत्र आया जोकि अत्यन्त उजाड़ तथा विरान था। विभाजन के समय ही देवता बनाड़ को यह कहा गया था कि 'कोटलाह' (जुब्बल तहसील का पूर्वी-भाग) क्षेत्र पर यदि वह अपनी शक्ति से अपना अधिपत्य स्थापित कर सके तो वह क्षेत्र उसे अतिरिक्त भाग के रूप में दिया जाएगा।

'खूनीगाड़' क्षेत्र में कुछ समय तक अपना अधिपत्य स्थापित करने के पश्चात देवता बनाड़ ने 'कोटलाह' की ओर रूख किया तथा अपनी अभूतपूर्व शक्ति के द्वारा कुटलाह के 'कुई' नामक स्थान पर पुनः प्रकट हो गए। इस स्थान के विषय में यह उल्लेखनीय है कि यहां शिव रूपी 'देवता क्यालू' प्राचीन काल से ही विद्यमान था तथा इस क्षेत्र में इस देवता का पर्याप्त प्रभाव था। 'देवता बनाड' का इस स्थान पर प्रकट होना 'शिव' तथा 'विष्णु' का मिलन माना जाता है।

जनश्रुति है कि जिस स्थान पर इस प्रतापी देवता की उत्पति हुई 'भांखा' नामक व्यक्ति का खेत था। भांखा प्रतिवर्ष की भांति खेत में हल जोतने से पूर्व घास काटने के लिए खेत में पहुंचा तथा शाम तक उसने पूरे खेत की घास काट दी। दूसरे दिन प्रातः वह बैलों की जोड़ी लिए जब खेत में पहुंचा तो यह देखकर चकित रह गया कि पूरे खेत में घास ज्यों की त्यों उगी हुई है। विवश होकर आज भी उसे घास ही काटनी पड़ी। चार पांच दिनों तक यही घटना होती रही। एक दिन तंग आकर उसने बिना घास काटे ही हल चलाने का निश्चय किया। हल चलाते ही उसके हल से कोई विशेष वस्तु टकराई तक एक विचित्र सी आवाज़ उत्पन्न हुई। पूर्ण वातावरण क्षण भर के लिए मनमोहक तथा प्रकाशमय हो गया। भांखे ने देखा कि उसके हल के निकट ही सोने की एक सुन्दर प्रतिमा पड़ी है। वह उसी क्षण समझ गया कि यह प्रतिमा कोई साधारण प्रतिमा नहीं है, वह इस प्रतिमा को उसी क्षण घर ले आया तथा अपने मकान के तीरे (ताक) में रखकर नियमित रूप से इसकी पूजा करने लगा। भांखा लकड़ी के एक छोटे नगाड़े को बजाकर प्रतिदिन इस प्रतिमा की पूजा किया करता था। यह नगाड़ा इस स्थान पर आज भी विद्यमान है तथा लोगों की आस्था का आकर्षण बना हुआ है।

भंखोट (भांखे का निवास स्थान तथा देवता बनाड़ का मुख्य थान) से कुछ ही दूरी पर 'कोटी' नामक स्थान पर एक राणा राज्य करता था जिसके यहां पीतल के वाद्य-यन्त्र थे एक दिन 'प्रतिमा' को पीतल के वाद्य-यन्त्रों की ध्वनि सुनाई दी तथा उसने पूछा कि यह बाजे कहां बज रहे हैं? भांखे से उत्तर पाने के पश्चात् देवता बनाड़ ने बड़ी माता (शीतला) के प्रकोप से कोटी की ठकरैत को नष्ट कर दिया तथा वहां की समस्त सम्पत्ति तथा वाद्य-यन्त्र अपने अधिकार में ले लिए। तदोपरान्त उसी स्थान के ठीक सामने 'घयान' नामक स्थान पर एक अन्य ठाकुर की ठकरैत थी इस पर भी देवता बनाड़ ने अपना अधिकार कर लिया तथा धीरे-धीरे 'रावीं' तथा जुब्बल के पूर्ण क्षेत्र में देवता बनाड़ की पूर्ण मान्यता स्थापित हो गई। राजा जुब्बल ने भी देवता बनाड़ को अपना अराध्य मानकर उनको राज्य देवता की उपाधि प्रदान की।

'देवता बनाड़' इस क्षेत्र का प्रतिनिधि देवता है तथा इस देवता का नाम यहां के लोगों द्वारा बहुत ही आदर तथा श्रद्धा से लिया जाता है। 'देवता बनाड़' के मन्दिर इस क्षेत्र के प्रायः सभी स्थानों पर विद्यमान हैं तथापि 'पुजारली' तथा 'भंखोट' के मन्दिर इनके प्रसिद्ध मन्दिरों में से हैं। देवता का कोई भी शुभ कार्य तथा यज्ञ प्रायः इन्हीं मन्दिरों में सम्पन्न होता है। देवता बनाड़ के पूजन आदि का प्रबन्ध अत्यन्त लोकतांत्रिक ढंग से किया जाता है। 'देवता बनाड़' अपने क्षेत्र के सभी गांवों में एक-एक वर्ष के लिए जाता है तथा पूरे वर्ष के पूजन आदि का सारा व्यय उसी गांव के लोगों द्वारा किया जाता है। देवता के मन्दिर में एक पुजारी, एक ठाणी (रसोईया) तथा एक वादक सदैव अपने-अपने कार्य के लिए तैनात रहते हैं। देवता का सुबह तथा शाम दोनों समय नियमित रूप से पूजन होता है। इसके अतिरिक्त अर्द्धरात्री तथा रात खुलने से पूर्व भी नवद (इस समय केवल ढोल आदि वाद्य-यन्त्र ही बजाए जाते हैं) बजाई जाती है। सायंकाल अंधेरा होते ही मन्दिर के बाहर आग जलाई जाती है जो प्रातःकाल तक निरन्तर जलती रहती है। जिस गांव में देवता रहता है उस गांव के चार-चार व्यक्ति नियममित रूप से देवता के मन्दिर में पहरा देते रहते हैं। जो रात भर 'खबरदार', 'खबरदार' की आवाजें लगाते रहते हैं।

देवता का एक सुन्दर रथ है जिसके बाहर सोना मढ़ा रहता है। इसके ऊपर सोने का एक काफी बड़ा छत्र लगा रहता है। रथ केवल उसी समय सजाया जाता है जब देवता को मन्दिर से बाहर ले जाना हो अन्यथा पूजा 'भरी पीढ़ी' (इसमें स्वयं देवता तथा अन्य सहयोगी देवी-देवताओं की मूर्तियां पूजन के लिए सजा कर रखी जाती हैं) की ही की जाती है।

देवता का हर प्रकार का प्रबन्ध लोक-तान्त्रिक विधि से किया जाता है। देवता की एक साधारण सभा है जिसके सदस्य पूरे इलाके के लोग होते हैं। इस सभा की बैठक किसी विशेष निर्णय लिए जाने की स्थिति में ही बुलाई जाती है। यह बैठक देवता के प्रमुख 'थान' अथवा उस गांव में बुलाई जाती है जहां पर देवता उस समय हो। साधारण मामलों में निर्णय 'कारदारों' द्वारा लिया जाता है जिनका चयन प्रत्येक गांव तथा प्रत्येक वर्ग में से किया जाता है। समय-समय पर पुराने कारदारों के स्थान पर नये कारदार भी चुने जाते हैं। कभी-कभी देवता स्वयं भी किसी व्यक्ति को कारदार नियुक्त करता है। 'वजीर' तथा भण्डारी आदि कुछ ऐसे सदस्य हैं जि हें पैत्रिक अधिकार से कार्यकारिणी में रखा जाता है। कारदारों की बैठकें एक वर्ष में प्रायः चार-पांच बारं होती है। बैठक में लिए गए प्रत्येक निर्णय की सूचना कारदार अपने-अपने गांव वालों को देते हैं।

'देवता बनाड़' का अपना एक काफी बड़ा भण्डार भी है जिसमें अन्न तथा नकदी जमा रहती है। आवश्यकता पड़ने पर इस भण्डार से जरूरतमन्द लोगों को अनाज तथा धन कम ब्याज पर ऋण के रूप में दिया जाता है। जब कोई महान यज्ञ अथवा अनुष्ठान किया जाता है तो भण्डार में जमा सामग्री को प्रयोग में लाया जाता है।

'देवता बनाड़' शांत एवं प्रतापी देवता है। देवता के किसी भी कार्य, यज्ञ तथा मेले आदि में बलि नहीं दी जाती। समय-समय पर देवता अपने सहयोगी देवताओं के साथ बद्रीनाथ, केदारनाथ तथा अन्य तीर्थ स्थानों की धार्मिक यात्रा पर भी जाता है। यात्रा से वापिस आने पर कई स्थानों पर बड़ी-बड़ी धामें दी जाती हैं तथा यज्ञ हवनादि किए जाते हैं।

शांत, प्रतिष्ठा, वीशू, जातर, जागरा, वसन्त पंचमी तथा बूढ़ी दिवाली आदि मेले तथा त्यौहार देवता के नाम पर बड़ी धूम-धाम तथा श्रद्धा से मनाए जाते हैं। इन अवसरों पर लोग देवता के दर्शन करने दूर-दूर से आते हैं तथा उनसे सुख तथा समृद्धि की कामना करते हैं। देवता के प्रति लोगों की श्रद्धा विश्वास तथा आस्था आज भी वैसी ही है जैसी कि सैकड़ों वर्ष पूर्व थी।

भाषा एवं संस्कृति विभाग,
शिमला–२

लोक-नाट्य भगत

—ओंकारलाल भारद्वाज 'चंगर'

भगत कांगड़ा घाटी का प्राचीनतम लोक-नाट्य है तथा इसे लोक कलाकारों द्वारा गांव के खुले प्रांगण में दर्शकों एवं श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। भगत में मुख्यत: चार दृश्य ही दर्शकों को दिखाये जाते हैं। पहला श्री कृष्ण लीला—जिसमें मनसुखे का आगमन भी दिखाया जाता है, दूसरा सरस्वती माता का स्वांग, तीसरा मुजरा, और चौथा कोई सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा ऐतिहासिक किस्सा, जैसे सत्यवान–सावित्री, वीर अमरसिंह राठौर इत्यादि। आस-पास के ग्रामों के ग्राम्य कलाकारों द्वारा एक मण्डली बनाई जाती है, जिसका मुख्य कलाकार मास्टर जी या उस्ताद जी कहलाता ह। दस पन्द्रह किलोमीटर के वृत में प्राय: कोई न कोई भगत मण्डली मिल ही जाती है। भगत देखने वाला इच्छुक व्यक्ति मण्डली के मुखिया के पास जा कर अपना पूरा नाम तथा गांव का नाम बताता है तथा दिन और तिथि बतला कर अग्रिम धन जिसे 'साई' कहते हैं, भी देता है। साई सवा रुपया से लेकर पांच रुपयों तक भी हो सकती है तथा शेष राशि भगत मण्डली के आगमन पर दी जाती है। निर्धारित दिन को मण्डली बताए गए गांव की ओर साज और आवश्यक सामग्री लेकर प्रस्थान करती है तथा मण्डली के सदस्य बारी-बारी से कभी तबले का दायां और कभी बायां भाग बजाते रहते हैं, ताकि मार्ग में आने वाले गांवों में भगत का प्रचार हो जाए तथा अधिक से अधिक लोग भगत देखने आ सकें। जहां भगत होनी होती है उस घर का ज्येष्ठ सदस्य सारे ग्राम वासियों, मित्रों तथा समस्त बन्धु-बान्धवों को मौखिक रूप से निमन्त्रण भेजता है। गांव के लोग भी इसी प्रकार अपने हितैषियों को भगत देखने का सन्देश भेजते हैं ताकि सभी लोग भगत देख कर लाभान्वित एवं आनन्दित हो जाएं। प्राय: एक मास पहले ही भगत का प्रचार होने लग पड़ता है।

भगत मण्डली के आने से पूर्व ही उनके भोजन इत्यादि का प्रबन्ध किया होता है और लोग आंगन में एकत्रित हुए होते हैं। गृह स्वामी ने आंगन के मध्य में आग जला कर रखी होती है, ताकि लोगों को गर्मी मिलती रहे तथा एक कोने में भगत मण्डली का मंच लगा कर रखा होता है। मंच साधारण होता है, केवल हल्के फुल्के बिछौने ही प्रयोग में लाकर ऊपर से दरी बिछा दी जाती है। एक कमरे में या प्राकृति के खुले आंचल में कलाकारों को दृश्यों के क्रम से सजाया जाता है और कलाकार लोगों के सम्मुख आकर अपनी भूमिका निभाते हैं।

सर्वप्रथम भगत मण्डली का मास्टर घर के ज्येष्ठ सदस्य को बुला कर कुल देवी-देवताओं की बन्दना करवाता है फिर अग्नि में पूजन किया जाता है। प्रसाद लगा कर उसे सभी उपस्थित जन समूह में बांटा जाता है। इसी समय मण्डली के मास्टर के पास भगत मण्डली का पूरा शुल्क भी दे दिया जाता है। भगत मण्डली का उस्ताद फिर साजों पर बढ़िया धुनें निकाल कर इस

प्रकार गाता है—"ओम् गणपत गणेश मनायो मेरी देवा। गणपत गणेश मनायो मेरी देवा।" इसके पश्चात् जगदम्बा माता की भेंटें भी गाई जाती हैं जैसे—

"गढ़ कांगड़े काली धारा, मैया तेरा भवन बनाया गढ़ कांगड़े काली धारा।"

इसी प्रकार नाना प्रकार की स्तुतियां गा कर प्रथम दृश्य प्रस्तुत किया जाता है—**श्रीकृष्ण लीला।** इस दृश्य में सर्वप्रथम बाल कलाकार को श्री कृष्ण के रूप में सजा कर एक कुर्सी पर खड़ा कर दिया जाता है और फिर छोटी आयु के युवक कलाकार नारी वेश में आते हैं। पहले समस्त साज़ों की वन्दना कर श्री कृष्ण भगवान के आस पास खड़े हो जाते हैं और फिर सभी मिल कर यूं गाते हैं। **'जय जय करदी आई, जय करदी आई।'** इसके बाद श्रीकृष्ण की स्तुती गाते हैं। काफी देर तक गाने के बाद एक अद्‌भुत वेश-भूषा में प्रौढ़ आयु का कलाकार जिसे मनसुखा या डन्डा कहते हैं, आता है और भगवान श्री कृष्ण के दरबार में जा कर भगवान कृष्ण जी के दर्शन कर कृतार्थ होना चाहता है। मण्डली के सदस्य इसे रोक लेते हैं और इसे वहां न जाने का परामर्श देते हैं। वे बताते हैं कि भगवान जी के महल यहां से बहुत दूर हैं, रास्ता बड़ा खराब है तथा तेरे जैसे व्यक्ति को वहां जाने में नाना प्रकार की कठिनाइयां आयेंगी। समझाने पर भी जब मनसुखा नहीं मानता है तो उसे जाने की आज्ञा दे देते हैं। मनसुखे से बातें करने वाला कलाकार अपने आप को श्री कृष्ण जी का दरबारी बताता है। वह मनसुखे से उसका पूरा पता जानने हेतु पूछता है, "तू जाने से पूर्व अपना अता पता तो बता दे ?" मनसुखा गा कर बताता है, **"आये हैं जी आये हैं बड़ी दूर ते, आये हैं बड़ी दूर ते आये हैं।"** जब उसके भोजन आदि के बारे में पूछा जाता है तो मनसुखा फिर गा कर बताता है **"हाथ पैर छोटे छोटे, पेट जबरे दी जन्घ, पेट जबर जंघ, आठ सेर लड्डू खान्दा होर पीन्दा भंग—होर पीन्दा भग।"** मनसुखा नाच कर और गा कर ही सारी बातों का उत्तर देता है। अन्त में जब वह भगवान के दरबार के समीप पहुंच जाता है, तो उसकी सखियों से नोक झोंक हो जाती है। अन्ततः वह श्री कृष्ण जी के दर्शन कर लाभान्वित हो ही जाता है। मनसुखा की बातों को सुन कर दर्शकों के पेट में हंस-हंस कर बल पड़ जाते हैं। मनसुखा का अभिनय वही कलाकार करता है, जो लोगों को ज्यादा से ज्यादा हंसा सके। सखियों का अभिनय करने वालों को चन्द्रौली कहा जाता है। इस दृश्य में मनसुखा नाना प्रकार के कुशल सन्देश तथा कुरीतियों इत्यादि के विषय में भी बताता है।

दूसरे दृश्य में **'सरस्वती माता की झांकी'** निकाली जाती है। माता जी को मोर पर सवारी किए दिखाते हैं तथा गाकर पूछा जाता है :

'कौण देव ने पैदा कीती, कौण देव ने मन्नी जी,
तू है मेरी देवा आद भवानी जी, तू है मेरी देवा आद भवानी जी।"

माता सरस्वती भी उत्तर गा कर ही देती है :

"आद देव ने पैदा कीती, तीन लोक ने मन्नी जी,
तू है मेरी देवा आद भवानी जी।'

फिर पूछते हैं :

"कौण देव तेरी करी रसोईया, कौण भरे जल पाणी जी,
तू है मेरी देवा श्राद भवानी जी ।"

माता पुनः उत्तर देती है :

"ब्रह्मा विष्णु मेरी करे रसोईया, इन्द्र भरे जल पाणी जी,
तू है मेरी देवा श्राद भवानी जी ।"

फिर समस्त भगत मण्डली माता जी से प्रार्थना करती है तथा इस प्रकार गाती है :

'श्रावतारे जग तार मेरी माता, श्रावतारे जगतार जी ।'

इसी पंक्ति को कई बार गाते हैं और फिर माता सरस्वती की आरती करते हैं और थाली में धूप एवं ज्योति जगाई जाती है। दृश्य समाप्ति के साथ ही एक आदमी फूल और ज्योति वाली थाली को सारे दर्शकों के पास ले जाता है और उपस्थित वृन्द ज्योति की नत मस्तक हो बन्दना करते हैं और श्रद्धानुकूल धन भी चढ़ाते हैं तथा मन ही मन में माता सरस्वती जी से कुशल मंगल मांगते हैं।

तीसरे दृश्य में **'मुजरा'** होता है, जिसमें लोगों की इच्छानुकूल गीत आदि प्रस्तुत किए जाते हैं और नृत्य भी किया जाता है। लोग पैसे देते हैं, जिन्हें बेल करना कहते हैं। तीन चार युवक कलाकार नारी वेश-भूषा में गाते और नाचते हैं। यदि कोई एक रुपया बेल देता है तो कलाकार दूसरे साथियों को हाथ ऊंचा करके रुपया दिखाता है और सभी कलाकार गाने को बीच में ही समाप्त कर देते हैं तथा रुपया लेने वाला युवक कलाकार इस प्रकार गाता है :

जय जननी ज्वालामुखी तैं खूब रचाई खेल,
एक रुपया रिड़कू राम ने दिया मोहे दीनी है बेल ।

यदि कोई बेल बढ़ाएगा, सदा सुख सम्पत पाएगा। जो जो भी बेल देगा, केवल उसी का नाम लेकर मंगल कामना करते हैं। बेल द्वारा प्राप्त रुपयों को मण्डली के उसताद जी के पास हरमोनियम की पेटी पर रखते जाएंगे तथा पुनः लोगों की फरमायश पर गाने एवं नृत्य करने लग पड़ेंगे। इकट्ठे किए गए रुपये भगत मण्डली कलाकारों की भूमिका और गुणों के आधार पर बांट देती है।

चौथे दृश्य में कोई सा किस्सा कहानी गाकर और नाच कर पेश की जाती है। कथानक को कलाकार इतनी कोमलता एवं भावुकता से प्रस्तुत करते हैं कि कभी-कभी तो दर्शक रो पड़ते हैं। जो भी किस्सा पेश करना होता है उसकी घोषणा भी एक कलाकार गाकर यूं पेश करता है :

हर छोटा होर बड़ा श्रर्ज सुने मेरी गौर,
श्रज राती लीला खेलनी वीर श्रमरसिंह राठौर,
श्रमरसिंह राठौर, हां जी श्रमरसिंह राठौर ।

इसके उपरान्त विधिवत घोषणा के अनुकूल लीला आरम्भ कर देते हैं। लीला ऐतिहासिक

धार्मिक तथा अन्य प्रकार की भी खेली जा सकती है। लीला की समाप्ति पर अन्त में आरती गाई जाती है, और फिर भगत के कार्यक्रम की समाप्ति हो जाती है। लोग अपने-अपने घरों को वापिस चले जाते हैं तथा भगत मण्डली भी जलपान करके अपने निवास स्थान की ओर प्रस्थान कर देती है। चौथे दृश्य के अन्त तक प्राय: सवेरा ही हो जाता है।

गो अब नाना प्रकार के मनोरंजन के साधन चल पड़े हैं, फिर भी कांगड़ा घाटी में भगत का महत्व कम नहीं हुआ है। अब भी लोग बड़े चाव से भगत को देखने जाते हैं। भगत प्रचार का भी एक बड़ा साधन है तथा मण्डली नाना प्रकार के सुखद सन्देश भी लोगों तक पहुंचा देती है। भगत खेलने के लिए यह आवश्यक है कि वर्षा ऋतु न हो और किसान भाई बहनें कृषि कार्य में व्यस्त न हों तथा पहाड़ी नदी नालों में जल की भी अधिकता न हो तो ऐसा समय जिस में मौसम भी सुखद हो और लोग भी कार्यरत न हों, उपयुक्त समय होता है। भगत मण्डलियों का साहित्य, भाषा, कला एवं संस्कृति के प्रति भी योगदान सराहनीय है।

आकाशवाणी, शिमला।

* रेणुकोद्धार *
(नाटक)

—भुवनेश्वर सुमन

पात्र परिचय

पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
महर्षि जमदग्नि	एक स्त्री
परशुराम भार्गव	रेणुका
गन्धर्व राज	

प्रथम दृश्य

[स्थान आर्यावर्त। उदास सा वातावरण प्रस्तुत करते संगीत की ध्वनि वाद्य यन्त्रों पर बज रही है। एक प्रचण्ड दौड़ते हुए घोड़े की टापों की ध्वनि के साथ-साथ प्रचण्ड गर्जना करता हुआ घोड़ा, भृगुओं के आश्रम में प्रवेश करता है। भृगु श्रेष्ठ जमदग्नि का आश्रम निर्जन और निस्तेज सा दिखाई पड़ता है। एक स्त्री आश्रम के बाहर झाड़ू दे रही है। स्त्री घोड़े को आता देख कर चौंक कर खड़ी हो जाती है। भार्गव परशुराम घोड़े से उतर कर स्त्री से पूछते हैं।]

भार्गव : भृगु श्रेष्ठ कहां हैं ? पिता जी कहां हैं ? (स्त्री रो पड़ती है। भार्गव उसके समीप जा कर उसे झकझोड़ कर पूछते हैं) पिता जी कहां है ?

स्त्री : (पहचानते हुए कहती है।) कौन, राम !

भार्गव : मैं पूछता हूं, पिता जी कहां हैं ?

स्त्री : उस ओर नदी पर। (सिसकी भरती हुई स्त्री बोली)

द्वितीय दृश्य

[भार्गव दौड़ते हुए नदी तट की ओर जाते हैं। संगीत की ध्वनि फिर उभर जाती है। संगीत ध्वनि के साथ-साथ (किसी व्यक्ति) भार्गव के दौड़ते पद चापों का शब्द भी बीच-बीच में सुनाई पड़ता है। संगीत मद्धम होता है। नदी के जल प्रवाह का शब्द उभरता है। एक वृद्ध लाठी के सहारे धीरे-धीरे चलता हुआ भार्गव की ओर आ रहा है। वृद्ध पास आ जाता है तो भार्गव हाथ में लिया परशु फैंक देता है। वह दौड़ कर वृद्ध (मुनि जमदग्नि) को प्रणाम करता है। पांव पकड़ कर वह रोते हुए कहते हैं।]

भार्गव : पिता जी ! भृगु श्रेष्ठ !

जमदग्नि : (भृगु श्रेष्ठ चलते-चलते रुक जाते हैं) जा भाई, चला जा यहां से। मैं भृगु श्रेष्ठ नहीं हूं।

भार्गव : पिता जी ! पिता जी ! (हाथ जोड़ कर) यह आप क्या कह रहे हैं ? पिता जी मैं आपका पुत्र राम हूं। क्या आप मुझे भूल गए हैं ? मैं ही आपका पुत्र राम हूं।

जमदग्नि : (कुछ पहचानते हुए से) मैं पिता नहीं हूं। मेरे कोई पुत्र भी नहीं है। तू कौन है ? मैं तुझे नहीं जानता।

भार्गव : (हाथ जोड़ कर) पिता जी मैं हूं राम। आपका छोटा पुत्र। सहस्रार्जुन जिसे उड़ा ले गया था। मुझे आप नहीं पहचान रहे हैं। (रोते हुए) महर्षि जमदग्नि ! महा अथर्वण के पुत्र।

जमदग्नि : (फिर पहचानने का प्रयत्न करते हुए क्षीण सी आवाज में बोले) हां एक था जमदग्नि, महा अथर्वण का पुत्र। वह मर चुका है। न तो वह पितृलोक में ही गया है और न यमलोक में ही। वह जा कर पड़ा है अधोगति के तल में। भृगुओं के महाप्रताप के उस उत्तराधिकारी ने अपने पूर्वजों की संस्कृति से द्रोह किया था। वह मर गया है। उसे अब भूल जा। उसकी स्मृति तुझे कलंकित कर देगी।

भार्गव : (अधीर सा हो कर) यह क्या कह रहे हैं आप ? पिता जी ! पिता जी !

जमदग्नि : (मानो स्वप्न में बोल रहा हो) भूल जा उसे। उसके पास प्रताप था। अथर्वणों की विद्या के साथ-साथ शिष्य भी थे, पुत्र भी थे। परन्तु वह उन सबके योग्य नहीं था। आर्यों के पारस्परिक विनाश को वह रोक न सका। विश्वामित्र को वह विजय न दिला सका। भृगुओं के तेज, वीर्य और शुद्धि की वह रक्षा न कर सका।

भार्गव : पिता जी, यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं, आपका पुत्र वह सब लेकर आया हूं। शिष्य भी और सामर्थ्य भी। मैं क्षण मात्र में भृगुओं की खोई कीर्ति को उज्जवल करूंगा।

जमदग्नि : मूर्ख ! (जैसे स्वप्न में बोल रहे हों) मूर्ख ! जमदग्नि कभी माना करता था कि उसके शिष्य भी हैं और पुत्र भी। वह अपने को महर्षि कहलाता था। आर्यत्व की सिद्धि उसका व्रत था। भृगु कुल के कलंक रूप उस अधम को झंझाबात देखने का एक स्वभाव सा हो गया था। आज उसकी हड्डियां सियार और भेड़िये खा रहे हैं, क्योंकि उसका कोई नहीं है।

भार्गव : पिता जी मैं हूं और भाई विदन्वन्त हैं।

जमदग्नि : जमदग्नि के कोई नहीं था।

भार्गव : यह आप क्या कह रहे हैं, पिता जी ?

जमदग्नि : ठीक कह रहा हूं। जमदग्नि के पुत्रों की माता ने अपने पति की आज्ञा के विरुद्ध गन्धर्व-राज के साथ रह कर अपने पतिव्रत को भ्रष्ट कर लिया है।

भार्गव : (सुन कर भार्गव का सिर चक्करा जाता है, वह स्वयं कहता है।) अम्बा ! उसकी माता गन्धर्वराज के साथ।

जमदग्नि : और न वह स्वयं ही आर्यत्व रख सका और न दूसरों से ही रखवा सका ।

भार्गव : पिता जी ! पिता जी ! यह झूठ बात है । अम्बा आर्यत्व की जनेता-कल्याणी है ।

जमदग्नि : (दीन भाव से) लड़के, चले जा यहां से । मैं पिता नहीं हूं और तू पुत्र नहीं है । मेरा एक भी पुत्र ऐसा आर्य नहीं है, जो रेणुका का बध करके पिता के गौरव को सम्मान कर शुद्धि की रक्षा करता । पूर्वजों के बीच जा कर सम्मिलित होने को जमदग्नि के लिए पितृलोक और देवलोक के द्वार सदा-सदा को बन्द हो गए हैं । लड़के तू जहां से आया है वहीं लौट जा । भृगुओं की परम्परा ही समाप्त हो गई है । (जमदग्नि, भार्गव को वहीं छोड़, डण्डा टेकते हुए [हताश कदमों से डग भरते चले जाते हैं । भार्गव की आंखों से टप्-टप् आंसू बरसते हैं । फिर वह एक दम कठोर हो जाते हैं । परशु उठा कर दृढ़ स्वर में गूंज उठते हैं ।)

भार्गव : रेणुका ! अम्बा ! कल्याणी ! आज तुझे माता कहते हुए भी मुझे लज्जा आ रही है । एक भृगु श्रेष्ठ की पत्नी हो कर पर पुरुष सेवन करे ? एक आर्य प्रतिष्ठित महिला हो कर अपने क्षणिक सुख के लिए अनार्या कहलाने पर उतारु हो जाए ? ऐसी महिला–महिला नहीं । और ऐसी पत्नी–पत्नी नहीं । कुलटा है ! वैश्य है ! कुल कलंकिनी है ! ऐसी परपुरुष सेविनी आर्या का धर्म है मृत्यु–मृत्यु ! केवल सिरच्छेद । क्योंकि पिता की आज्ञा और माता की शुद्धि की भावना, मातृ-स्नेह से भी कहीं ऊंची होती है । (भार्गव परशु नचाता हुआ क्रोधित हो बड़े-बड़े डग भरता हुआ चला जाता है । संगीत उभरता है ।

[पर्दा गिरता है ।]

तृतीय दृश्य

[स्थान गन्धर्व प्रदेश । पहाड़ियों से घिरी कुछ झोंपड़ियों के पास ही भार्गव सोये हैं । पास ही उनका घोड़ा चर रहा है । सूर्य डूबने का समय है । शान्त पहाड़ी वातावरण को संगीत ध्वनि अधिक शान्ति प्रदान कर रही है । घोड़े की हिनहिनाहट के साथ ही वातावरण में थोड़ी कर्कशता उत्पन्न होती है । भार्गव परशुराम चौंक कर उठ बैठते हैं । सामने पहाड़ी पर से उतरती एक अधेड़ अवस्था की स्त्री (रेणुका) को उतरते देखते हैं । स्त्री का डील-डौल कुछ अधिक भरा-भरा सा है । मुख पर तेज है । भार्गव के मुख से अनायास ही निकल पड़ता है । संगीत का स्वर मद्धम सा होने लगता है ।]

भार्गव : (स्वयं) ओह ! वह तो अम्बा है । मां ! जिसकी गोद में मैं किलोलें किया करता था । जो मुझे अपना एक मात्र पुत्र समझ कर सबसे अधिक स्नेह किया करती थी । किन्तु आज ? एक कुलटा ! परपुरुष स्पर्शिनी ! गन्धर्वराज के साथ भागी हुई पतिता आर्या ! भृगुओं की मर्यादा को अपवित्र करने वाली अनार्या ! इसका सिर अवश्यमेव छेद होना चाहिए । हां होना ही चाहिए ।

रेणुका : (समीप आकर पहचानते हुए) अरे तू ! तू तो मेरा राम है ! राम ! पुत्रक !
(परशु राम खड़े हो जाते हैं । क्रूर और कठोर होकर किन्तु बोलता कुछ नहीं । परशु अब भी उनके हाथ में चमक रहा है ।)

रेणुका : (रेणुका राम की कठोर मुद्रा देख कर समझ जाती है। बनावटी हंसी हंस कर कहती है।) अच्छा ! समझी !

भार्गव : पिता जी ने मुझे भेजा है।

रेणुका : जिस प्रकार तेरे बड़े भाइयों को उन्होंने मुझे मारने के लिए भेजा था।

भार्गव : उन्होंने मुझे मारने के लिए नहीं भेजा है। मैं तो स्वयं मारने आया हूं। भृगु श्रेष्ठ की पत्नी यदि उनकी आज्ञा का उल्लंघन करती है और पर पुरुष का सेवन करती है तो वह वसुन्धरा के लिए भार स्वरूप है।

रेणुका : (दुखी स्वर में बोली) मैं जानती हूं। अनेक आर्यों और आर्याओं को मैंने यही शिक्षा दी है।

भार्गव : तो फिर यहां आ कर क्यों रह रही है ?

रेणुका : भृगु श्रेष्ठ बड़े हैं। विद्या और तप के स्वामी हैं। यह सच है कि मुझ से धर्म का उल्लंघन हुआ है। पर किस कारण मैंने धर्म का ऊल्लंघन किया, यह जानने की चिन्ता न उन्हें है और न तुझे। जिस दिन मुझ से यह सब हुआ, अपनी ओर से तो मैं उसी दिन मर गई थी। तू मेरा प्यारा पुत्र है। आ पुत्रक मुझे मार। और जान बूझ कर जिस पाप में मैं पड़ी हूं' उस से मुक्त कर।

परशु-भार्गव : (चकित हो कर) तो आश्रम को लौट चलो।

रेणुका : (खिन्न हो कर) नहीं, पुत्रक ! भृगुओं के पास सुख है, समृद्धि है। उनकी सुख समृद्धि में मैं भाग लेने योग्य अब नहीं हूं। उनके साथ रह कर मेरा अधर्म उनके आर्यत्व को भ्रष्ट कर देगा।

भार्गव : (आक्रान्दित हो कर) अम्बा ! अम्बा ! तुम्हारा स्थान यहां है।

रेणुका : (स्वस्थ्य मन से) हां, तभी तो कहती हूं। मार, बेटा मार ! तेरे पिता ने तेरे तीन भाइयों को भी मुझे मारने के लिए भेजा था किन्तु वे साहस न कर सके। बेटा, देवों से अधिक पूज्य अपने पति की आज्ञा का जो मैंने उल्लंघन किया है, उसका दण्ड मैं अवश्य भुगतना चाहती हूं। मुझे मुक्ति प्रदान कर। मुझे मार।

भार्गव : (क्रूर होते हुए किन्तु रोते स्वर में) अम्बा ! अम्बा ! इस सब का मान यदि तुझे पहले था, तो फिर पूर्वजों को कलंकित किस लिए किया ? पिता का तेज क्यों नष्ट किया ? किस लिए भृगुकुल का सर्वनाश किया ?

रेणुका : राम, मैंने तीस वर्ष तक तेरे पिता और तेरे कुल की अनिमेष सेवा की ! तुझे और तेरे भाइयों को उस कुल का दीपक बनाने के लिए, अपने सर्वस्व का दान किया। पितृलोक में भी अब मेरे लिए स्थान नहीं है। मैंने तुझे बड़े लाड़ प्यार से पाला है, बेटा ! तू अपनी जनेता की एक इच्छा अवश्य पूरी कर दे।

भार्गव : अम्बा ! तू तो भृगु महर्षि जमदग्नि की पत्नी है ! तूने धर्म का लोप किया है। जब तक तेरा सिरच्छेद नहीं होता, पितृ ऋण तब तक चुकाया नहीं जा सकता।

रेणुका : अरे ! तू यहां कैसे ? (चकित हो कर पूछती है ।)

भार्गव : अम्बा ! इससे पहले कि तू गन्धर्वों के यहां जाये, मैं तुम से एक बात किया चाहता हूं ।

रेणुका : तो चल मेरे साथ । क्या इतना उतावला हो गया है मुझे मारने के लिए ?

भार्गव : नहीं, मैं यहीं बात करु ंगा ।

रेणुका : तो कह न फिर । मुझे देर हो रही है । बेचारे गन्धर्व !

भार्गव : अम्बा ! तू जानती है, पिता जी अविश्वास से पागल हो रहे हैं । पुत्रों को वे पितृ-द्रोही मानते हैं । तेरे कृत्य के कारण कुल प्रतिष्ठा समाप्त हो गई है । सिर उठा कर देखना भी कठिन हो गया है । मुझ से भी अब आर्यावर्त लौटना कठिन हो गया है । भृगुओं को अब त्यागना ही होगा ।

रेणुका : (अधीर हो कर) नहीं, नहीं । ऐसी बातें मत कर बेटा । भृगुओं की शक्ति और पवित्रता की रक्षा मैं और तेरे पिता जी नहीं कर सके । तू जमदग्नि का पुत्र है । तू देव है । भृगुओं और आर्यों का उद्धार करने के लिए ही तेरा जन्म हुआ है । यह भार तुझ पर ही है ।

भार्गव : तो तू नहीं लौटेगी ।

रेणुका : नहीं, तेरा स्थान आर्यावर्त में है । मेरी चिन्ता न कर । तू चाहता है तो मुझे मार डाल । यदि ऐसा नहीं कर सकेगा तो तेरे कुल का कलंक नहीं धुलेगा ।

भार्गव : अम्बा ! तू भूलती है, मैं धर्म का प्रतिपादन करने के लिए आया हूं, लोप करने के लिए नहीं । तुझे मारु ंगा तो धर्म का लोप होगा ।

रेणुका : ऐसी पागल बातें न कर ।

भार्गव : अम्बा ! पिता जी धर्म को भूल गए हैं । भृगुलोक ही नहीं, समस्त आर्यावर्त ही धर्म को भूल गया है । तू मुझे मारने को कहती है । इसलिए तू भी धर्म को भूल गई है । तू पर पुरुषों की सेवा इसलिए कर सकती है, क्योंकि तू महर्षि जमदग्नि की परम विशुद्धि है । जहां विशुद्धि होती है । वहां अधर्म हो ही नहीं सकता । चल मेरे साथ मैं पिता जी को समझाऊंगा । और खोये हुए सम्मान को दैदिप्यमान करूंगा ।

रेणुका : (दृढ़ता से) मैं नहीं जाऊंगी ।

भार्गव : नहीं चलेगी ?

रेणुका : कदापि नहीं ।

भार्गव : (कड़े स्वर से आज्ञा देता है) मैं कहता हूं, चल ।

रेणुका : नहीं ! नहीं ! मेरे गन्धर्वों का भी कुछ बिचार है ।

भार्गव : उनका विचार कर लिया है । उनमें से अब एक भी गन्धर्व जिन्दा नहीं है । ब्रह्म मूहूर्त में ही मैं उन सबका सिरच्छेद कर आया हूं ।

रेणुका : (चीख कर) ओ घातक ! तूने उन तीस निःसहायों के प्राण ले लिए ? तुझे पापी दया नहीं आई ।

भार्गव : हां, जो जी न सके, उसका मर जाना ही अच्छा है।

रेणुका : (सिसक कर) पापी तूने यह क्या अनर्थ कर दिया।

भार्गव : अम्बा ! कल्याणी मां ! तेरे आंसू सबलों को सामर्थ्य देने के लिए हैं। मरते प्राणी की मृत्यु की घड़ी को बढ़ाने के लिए नहीं।

(रेणुका चीख उठती है। भार्गव उसे जबरदस्ती उठा कर घोड़े पर चढ़ कर, घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ भृगु जमदग्नि के आश्रम की ओर ले जाता है। रेणुका रोते-रोते क्रोध के आवेश में पुत्र की छाती में मुक्कियां मारती जाती है। भार्गव रेणुका को सम्भालता हुआ घोड़े की लगाम थामें रेणुका से कहता है।)

भार्गव : रो ले, रो ले, अम्बा ! तूने बहुत सहन किया है। मां...... ! (संगीत फिर उभरता है। संगीत के साथ-साथ घोड़े के टापों की आवाज भी धीमी पड़ती जाती है।)

[पर्दा गिरता है]

छठा दृश्य

(स्थान सरस्वती नदी का किनारा। मुनि जमदग्नि अचेत से नदी के किनारे-किनारे टहल रहे हैं। बड़ी बड़ी सफेद दाढ़ी, जटाएं बांधे मानों क्षितिज के उस पार होने वाली उथल-पुथल को समझने का व्यर्थ (निरर्थक) प्रयत्न कर रहे हैं। संगीत उभरता है। साथ-साथ दूर से घोड़े के दौड़ने की आवाज भी उभरती है। अन्त में घोड़ा पास आकर रुक जाता है। भार्गव, रेणुका को घोड़े से कंधे पर उठा कर महर्षि जमदग्नि के चरणों में डाल देते हैं। संगीत धीमा हो जाता है।)

रेणुका : (खड़ी होती है और जमदग्नि के पांव पर गिर जाती है) नाथ।

जमदग्नि : (बाबले से कभी भार्गव को तो कभी रेणुका को उन्मत सी तेज आंखों से निहारते हैं।) त......त......तुम।

भार्गव : पिता जी ! पिता जी ! मैं अम्बा को ले आया हूं।

जमदग्नि : राम ! तू आ गया ? (आंखें मून्द लेते है)।

भार्गव : पिता जी ! मैं राम अम्बा को लेकर आया हूं। भगवती अम्बा को।

जमदग्नि : (चारों ओर खोए-खोए से देखते हैं) क्या कहा ?

भार्गव : पिता जी ! मैं अम्बा को लेकर आया हूं। मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया है।

जमदग्नि : (आंखों में कुछ चैतन्य सा आ जाता है।) 'रेणुका' (रेणुका को देखकर पीछे हटते हुए।) रेणुका। राम। तू मेरा पुत्र है न ?

भार्गव : (संयम से) हां पिता जी।

जमदग्नि : मेरी आज्ञा का पालन करेगा न ?

भार्गव : हां पिता जी।

जमदग्नि : तो इस अनार्या का सिरच्छेद कर।

भार्गव : अच्छा, पिता जी। (भार्गव परशु उठाते हैं) अम्बा ! कल्याणी ! पिता की आज्ञा तेरे और मेरे सिर पर है। गर्दन प्रस्तुत कर ! भार्गव के स्वर में प्रेम था।

रेणुका : बेटा ! यह लो। तेरे हाथों मेरी मृत्यु हो। केवल यही मेरी इच्छा और याचना है। (जमदग्नि सचेत होते जा रहे हैं। वह कभी भार्गव को तो कभी रेणुका को देख रहे हैं।)

जमदग्नि : राम ! सृष्टि के आदिकाल से आज तक आर्य जीवन में यह न कभी देखा और सुना गया कि कुल पति की अर्धांगिनी ने कभी परपुरुष का सेवन किया हो। वह मैंने देखा है, अपने ही घर में। आर्य जीवन की शुद्धि की रक्षा के लिए धर्म का अन्तिम बार पालन करना चाहता हूं। मैंने अनेक कुलटाओं का सिरच्छेद किया भी है और करवाया भी है। इसलिए अपनी प्रतीज्ञा पूरी करना चाहता हूं। (रेणुका की सिसकियां उभर आती हैं। भार्गव कांपते स्वर पें बोलते हैं।)

भार्गव : पिता जी ! मैं भी पुत्र धर्म का पालन अन्तिम बार ही करना चाहता हूं। पर......।

जमदग्नि : पर......क्या ? पुत्र !

भार्गव : मैं अम्बा को मारुंगा अवश्य। पिता की आज्ञा को माथे पर चढाऊंगा। किन्तु उसके बाद मैं अम्बा का ही अनुगमन करुंगा। यह मेरी भी प्रतीज्ञा है। माता की हत्या करके आर्यत्व का उद्धार नहीं कर सकूगा। क्योंकि उसके बाद मैं जीना नहीं चाहता।

जमदग्नि : तु मरना चाहता है ? (कुछ सोचते से बोले)।

भार्गव : भृगु श्रेष्ठ ! आपके कहने से मैं भले ही आर्य हो जाऊं। पर अपनी दृष्टि में तो मैं चाण्डाल ही रहुंगा। जीवन भर अपने आर्यत्व पर गर्व किया, पर उसके सामर्थ्य से आप भागते रहे। यदि आप चाहते तो जिस अम्बा ने जगत को उजाला दिया है, उसके अंगीकार किए हुए परम् धर्म को समझ कर मुझे अपना लेते। केवल आर्य गौरव के काष्ट पिंजर को ही आपने आर्यत्व मान लिया। उसके भीतर के प्राण को आपने नहीं पहचाना।

रेणुका : राम ! राम ! यह तू क्या कह रहा है।

भार्गव : सत्य ! जो तुम में से आज तक किसी ने सुना नहीं था। मैं तेरा सिरच्छेद करुंगा। केवल पिता की आज्ञा पालन करने के लिए। इसके उपरान्त मैं तुम्हारा नहीं हूं। आपने (अपने पिता की ओर देख कर) अम्बा के समान सती को कुलटा कहा है। अपने पुत्रों को उसे मारने के लिए भेजा। किन्तु आप अपने पैरों चल कर यह देखने नहीं गए कि वह किन गन्धर्वराज की सेवा कर रही है।

रेणुका : (उग्र होकर) चुप रह राम !

भार्गव : मैं चुप नहीं रहुंगा मां ! मेरे पास आंखें हैं, तुम सब अन्धे हो। ऐसा न होता तो मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए रक्त-पितियों की कल्याणी अम्बा को पापाचारिणी न मान बैठते। अधर्म आचार में नहीं है पर उसके पीछे रहने वाली दृष्टि में है। तुम में से किसी भी अन्धे को यह न सुझाई पड़ा।

रेणुका : (रोती हुई बीच में आ जाती है।) चुप रह राम ! क्या बक रहा है ?

भार्गव : मैं चुप कैसे रह सकता हूं ? आर्यत्व के मिथ्या अभिमान में आकर तुमने आर्यत्व का मूलोच्छेद किया है ।

रेणुका : (राम के मुख पर जोर का थप्पड़ मारती है ।) राम ! तू मेरी कोख लज्जाना चाहता है ? (फिर शान्त स्वर में कहती है ।) बेटा । पिता की आज्ञा को समाप्त कर रहा है । पैरों पड़ कर माफी मांग । (भार्गव स्थिर खड़े रहते हैं) राम ! छोड़ दे अपना मिथ्या अभिमान । बेटा यह मेरी अन्तिम आज्ञा है ।......इसके पश्चात् तू मेरा सिरच्छेद कर ।

भार्गव : (भार्गव कुछ कहे बगैर पिता के चरणों में बैठ जाते हैं) ।

रेणुका : यों गर्विष्ट भाव से नहीं ! तू तो धर्म का गाता है । पुत्र का सिर पिता के चरणों में ही हो सकता है ।

भार्गव : (भार्गव गद्–गद् कण्ठ से बोले) पिता जी ! क्षमा कर दीजिए ।

जमदग्नि : (पूर्ण सचेत से होकर, भार्गव को उठा कर गले लगा लेते हैं ।) बेटा ! शत्-शत् जियो ।

भार्गव : पिता जी ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हूं, और अम्बा का सिर अभी परशु से छेद करता हूं । अम्बा तैयार होजा ।

जमदग्नि : राम ! (जमदग्नि ने धीमे स्वर में कहा ।) तेरी बात सत्य है । मिथ्या अभिमान से नहीं, सामर्थ्य के द्वारा ही आर्यत्व की रक्षा सम्भव है । (भार्गव परशु उठाते हैं ।) पुत्र यह तू क्या कर रहा है ।

भार्गव : आपकी आज्ञा का पालन कर रहा हूं । अम्बा का वध कर रहा हूं ।

जमदग्नि : रेणुका ! रेणुका ! (रुदन के स्वर में जमदग्नि बोले ।) रेणुका मैंने तेरा वध करवाया । पर तेरे पुत्र राम ने तुझे जिला दिया । राम ! परशु फैंक दे । मैं अपनी प्रतीज्ञा को लौटा लेता हूं । (जमदग्नि ने पैरों पड़ी हुई, सिसकती रेणुका को उठा कर गले लगा लिया ।) प्रिय, रेणुका !

रेणुका : (सिसकते हुए रेणुका बोली) नाथ !

जमदग्नि : भार्गव ! रेणुका को आश्रम में ले जाओ । मैं स्नान से निवृत होकर आता हूं ।

भार्गव : चलो अम्बा ! मां ! चलो ! (दोनों आश्रम की ओर चल पड़ते हैं ।)

सातवां दृश्य

[भार्गव और रेणुका दोनों धीरे-धीरे नदी के किनारे वाले मैदान के बीच से भृगु आश्रम की ओर चल पड़ते हैं । संगीत फिर उभरता है । धीरे-धीरे मद्धम सा होता जाता है ।]

रेणुका : राम ! अन्त में तूने अनहोनी को होनी में बदल ही दिया । (रेणुका साथ-साथ चलते हुए राम से बोलती है । किन्तु भार्गव राम एकाएक अन्तर्ध्यान हो जाते हैं । रेणुका राम को साथ न पाकर हत्प्रभ सी हो जाती है ।) वह बार-बार राम को पुकारती है । राम ! अरे बेटा राम ! तू कहां छुप गया । (अधीर सी होकर) राम तू कहां चला गया ? राम...रा...म, रा......म...... ।

भार्गव : (तभी भार्गव, भगवान शंकर के रूप में प्रत्यक्ष प्रकट होकर) अम्बा । कल्याणी ! रेणुका ! मैं तो तुम्हारे ही पास हूं ।

रेणुका : (चकित रेणुका फटी–फटी सी आंखों से देखती रह जाती है ।) प्रभु ! आ...प ! आ...प मेरा राम कहां है ?

भार्गव : अम्बा ! कल्याणी ! रेणुका ! मैंने बार–बार दुष्ट जनों का संहार करने के लिए, तुझ जैसी सती-साध्वी, धर्मपरायणा, परोपकारिणी माताओं की कुक्षि से ही जन्म लिया है । इस बार हैहयराज सहस्रार्जुन का संहार करने तथा हिमालय से नर्वदा तक आर्यावर्त की स्थापना के लिए ही मैंने तेरी कुक्षि (कोख) से जन्म लिया है । रेणुका सहस्रार्जुन एक बड़ा सा सैन्यदल लेकर, आर्यावर्त का समूल नाश करने के लिए अनूपदेश से चल पड़ा है । उसका वध मेरे ही हाथों होगा । किन्तु वह मुनि जमदग्नि को तब तक भारी यातनाएं देकर समाप्त कर देगा । उस समय जिस स्थान पर तू महर्षि जमदग्नि के साथ सती होगी । उस स्थान पर गंगा के समान पवित्र निर्मल जल वाली एक सुन्दर झील का प्रादुर्भाव होगा । जो तेरे ही नाम से (रेणुका झील) युग-युगान्तर परियन्त तक संसार में प्रसिद्ध होगी । जो तुझ द्वारा गन्धर्वों तथा घायलों को दिए गए जीवन दान की गाथा का मूक संदेश सुनाया करेगी । कोटी-कोटी जन तुम्हारे दर्शनों को आया करेंगे । निसन्तान जन तुम्हारी मनौती मनाया करेंगे । दुखियों के आंसूओं को भूला देने वाली तुम्हारी ममता-मयी, माता पय (दूध) से भी अधिक प्राण-दायिनी झील की एक-एक बूंद की शक्ति होगी । अम्बा इस पृथ्वी के खण्ड-खण्ड में दुखियों के दुःख हरण करने वाली रेणुका माता के मन्दिर बनेंगे ।

रेणुका : (गद्–गद् कण्ठ से भगवान के पांव में गिर जाती है ।) प्रभु ! मैं तुम्हारी ही शरण में हूं । प्रभु । मुझे कुछ नहीं चाहिए । मुझे तो केवल राम चाहिए । राम ।

भार्गव : (भार्गव असली रूप में प्रकट हो जाते हैं ।) अम्बा मां—यह तुम क्या कर रही हो ? बेटे के पांव पड़ रही हो । उठो मां । उठो ! (रेणुका को उठा लेते हैं ।)

रेणुका : (राम को देख कर गद्–गद् हो उससे लिपट जाती है ।) राम ! अरे तू ! मेरा राम ।

भार्गव : हां मां । मैं तुम्हारा ही राम भार्गव हूं । तुम कैसी खोई-खोई सी हो ? (हसते हुए भार्गव बोले ।)

रेणुका : बस ! चुप रह । छलिया कहीं का ! अच्छा, बता अब तो कभी ऐसा छल नहीं करेगा न मेरे साथ ?

भार्गव : नहीं अम्बा मां ! अब कभी छल नहीं करूंगा ।

रेणुका : (अधीर होकर) राम ! तू मुझे अपनी माता समझता है न ?

भार्गव : हां अम्बा । मैं तेरा जनेता हूं । और तू युग-युग से मेरी मां चली आई है ।

रेणुका : (कुछ अधीर और खोई–खोई सी) तो मुझे वचन दे कि तू कम से कम वर्ष में एक बार अवश्य मुझे देखने आया करेगा ।

भार्गव : मां ! अम्बा ! मैं प्रतिवर्ष कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की देव प्रबोधिनी एकादशी के दिन तुम्हारे नाम से बनी उस रेणुका झील के पवित्र निर्मल जल में स्नान कर, तुम्हें अर्घ्य प्रदान कर, तुम्हारा चर्णामृत पान किया करूंगा । अवश्य किया करूंगा । मैं यह तुम्हारे चरणों की सौगन्ध खा कर कहता हूं । (भार्गव चरण स्पर्श कर लेते हैं ।)

रेणुका : (भार्गव को उठाकर गले मिलते हुए ।) भार्गव ! (भरे गले, गद्-गद् कण्ठ से कहती है ।)

भार्गव : (मां से लिपटते हुए) मां . अम्बा !

रेणुका : राम ! मेरे राम !

दोनों : अम्बा ! राम ! मां ! भार्गव ! कल्याणी मां ! रा......म ।

[संगीत धीरे–धीरे उभरता है । पर्दा गिरता है ।]

ग्राम व डाकघर बातल
तहसील अर्की, जिला सोलन
(हिमाचल प्रदेश)

भारत आदि पर्व ६वां अध्याय

नाग और गरुड़

—सन्तराम वत्स्य

सतयुग की बात है । दक्ष प्रजापति की दो कन्याएं थी—एक कद्रू और दूसरी विनता ।

दक्ष प्रजापति ने अपनी इन दोनों पुत्रियों का विवाह महर्षि कश्यप के साथ कर दिया ।

दोनों बहनें महर्षि कश्यप की सेवा में तत्पर रहतीं । महर्षि कश्यप दोनों पत्नियों की पतिभक्ति से प्रसन्न हुए । उन्होंने दोनों को एक साथ बुलाकर कहा—"मैं तुम्हारी सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हूं । मैं तुम दोनों को मनचाहा वरदान देना चाहता हूं । जिसकी जो इच्छा हो, वर मांग सकती हो ।"

मनचाहा वरदान मिलने की बात सुनकर दोनों ऋषि पत्नियां आनन्द से प्रफुल्लित हो उठीं ।

कद्रू बोली, "देव ! मुझे एक समान बलशाली एक हजार नाग पुत्र रूप में मिलें, यही मेरी मनोकामना है ।"

विनता ने कहा, "नाथ ! बल तेज और पराक्रम में कद्रू के एक हजार नाग-पुत्रों से भी बलशाली मुझे दो पुत्र प्राप्त हों ।"

महर्षि ने दोनों पत्नियों का मनोरथ पूर्ण करने के लिए 'एवमस्तु' कहा ।

सौतिया डाह के कारण विनता को अत्याधिक प्रसन्नता हुई क्योंकि उसके दो पुत्र कद्रू के हजार पुत्रों से अधिक बलशाली होने वाले थे ।

कद्रू को भी मनचाहा वरदान मिल गया था । वह भी प्रसन्न थी ।

महर्षि कश्यप ने कहा, "यथा समय तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी । मैं अब तपस्या करने तपोवन को जाता हूं । सावधान होकर तुम दोनों अपने-अपने गर्भ की रक्षा करना ।"

कश्यप वन में चले गए और ऋषि पत्नियां स्वस्थ-प्रसन्न रह कर गर्भकाल को बिताने लगीं ।

बहुत समय बाद कद्रू ने एक हजार और विनता ने दो अण्डे दिए ।

दासियों ने प्रसन्नता मनाते हुए दोनों के अण्डों को सुरक्षित स्थान में और उचित तापमान में रखा ।

पर इन अण्डों में से बच्चे नहीं निकले । प्रतिक्षा करते-करते पांच सौ वर्ष बीतने पर कद्रू के एक हजार अण्डे फूटे और उनसे एक हजार बच्चे बाहर निकल आए पर विनता के दो अण्डे ज्यों के त्यों रहे ।

कद्रू के बच्चे पहले निकल आने से विनता को अपनी हेठी मालूम हुई। सौत के सामने उसे अपनी हीनता का अनुभव हुआ। सौतिया डाह के कारण उसका विवेक नष्ट हो गया। वह जल्दी से जल्दी पुत्र का मुंह देखना चाहती थी। उसका मातृत्व पुत्र के लिए व्याकुल था।

उतावली में उसने अपना एक अण्डा फोड़ डाला।

इस अण्डे में से जो बच्चा निकला, उसके शरीर का ऊपरी भाग तो पूरा विकसित हो चुका था किन्तु शरीर का निचला भाग अभी अधूरा था।

अण्डे से जो बच्चा निकला था, वह अधूरा और अविकसित था। उसे मां की इस उतावली पर क्रोध आ गया। उसने कहा, "मां। तुम महाबलशाली सन्तान तो चाहती हो किन्तु उसके लिए लम्बी प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नहीं हो। तुमने जिस सौत की डाह के कारण अण्डे को अपने आप फोड़ा है, तुम्हें पांच सौ वर्षों तक उसी सौत की दासी बन कर रहना पड़ेगा। और सुन, यह जो तेरा दूसरा अण्डा है, इससे उत्पन्न होने वाला बच्चा ही तुझे दासता से छुड़ाएगा। पर यह तभी होगा यदि यह अण्डा पूरे समय बाद स्वाभाविक रूप से फूटेगा। अब इसे अपने हाथों फोड़ने की भूल मत कर बैठना। इसे फूटने में अभी पांच सौ वर्ष और लगेंगे। तब तक तुम्हें धीरज रखना होगा।" यह शाप देकर वह बालक 'अरुण' अन्तरिक्ष में उड़ गया। सूर्य भगवान ने उसे अपना सारथी बनाया। प्रातः सूर्योदय के समय जो लाली दिखाई देती है, यह उस अरुण का ही दर्शन है।

पुत्र दर्शन को उतावली विनता पुत्र का मुंह देखकर भी पुत्र के लालन-पालन से वंचित रह गई। उधर उस का अपना पुत्र उसे शाप भी दे गया। और शाप भी ऐसा कि सुनकर ही उसका शरीर कांप उठा। फिर वह यह सोच कर कुछ आश्वस्त हुई कि मेरा दूसरा बेटा मुझे शाप से छुटकारा दिलाएगा वह बड़ी आशा से दूसरे अण्डे को देखती हुई उसके फूटने की प्रतीक्षा करने लगी।

× × ×

पांच सौ वर्षों का लम्बा समय समाप्त हुआ। उस अण्डे से सर्पभक्षी गरुड़ का जन्म हुआ।

पक्षिराज गरुड़ जन्म लेते ही भूख से व्याकुल हो उठा और माता विनता को छोड़कर आकाश में उड़ गया।

× × ×

एक दिन दोनों सौतें—कद्रू और विनता एक साथ घूमने निकलीं।

दोनों ने देखा कि सामने से उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा चला जा रहा है। यह घोड़ा अद्भुत था। देवताओं और दानवों ने जब समुद्र-मन्थन किया था, तब यह समुद्र गर्भ से निकला था।

यह उच्चैःश्रवा अत्यन्त सुन्दर हृष्ट-पुष्ट और शुभ लक्षणों से युक्त था। उसको देखते ही आंखें जुड़ा जाती थीं।

उच्चैःश्रवा पलक झपकते ही आंखों से ओझल हो गया।

कद्रू ने विनता से पूछा "बहन। भला बताओ तो उच्चैःश्रवा का रंग कैसा था?"

विनता ने कहा, "शुभे ! अश्वराज उच्चैःश्रवा श्वेत रंग का है। तुझे उसका रंग कैसा दिखा। अच्छा तू बता, वह किस रंग का है, फिर हम दोनों शर्त लगाएंगी।

कद्रू ने कहा, यह कहना ठीक नहीं है कि उच्चैःश्रवा श्वेत रग का है। क्योंकि उसकी पूंछ काले रंग की है। बोलो, शर्त लगाती हो तुम्हारी बात ठीक हुई तो मैं तुम्हारी दासी बनकर रहुंगी और यदि मेरी बात ठीक हुई तो तुम्हें मेरी दासी बनकर रहना होगा। कहो, क्या कहती हो ?

विनता ने शर्त मान ली। दोनों बहनें यह कहती हुई घर लौट गईं कि कल उच्चैःश्रवा को आकर देखेंगी कि उसका रंग कैसा है।

कद्रू जानती थी उच्चैःश्रवा की पूंछ सफेद है। फिर भी उसने जान-बूझ कर विनता से शर्त बद ली थी। वास्तव में वह विनता को शर्त में हराकर अपनी दासी बनाना चाहती थी। वह छल-कपट द्वारा अपनी झूठी बात को सच्चा करने की तैयारी करने लगी।

उसने अपने एक हजार नागपुत्रों को बुलाकर कहा, "तुम सब काले रंग के बाल बनकर उच्चैःश्रवा की पूंछ से चिपट जाओ, जिससे देखने पर पूंछ का रंग काला दिखाई दे और मैं शर्त जीत जाऊं और विनता को मेरी दासी बनना पड़े।"

सभी नाग इस छल में साथ देने के लिए तैयार नहीं हुए। जिन नागों ने आज्ञा का पालन नहीं किया, उन्हें कद्रू ने बड़ा दारुण शाप दे डाला। उसने कहा, "तुम सब पाण्डव वंशी राजा जनमेजय के नागयज्ञ में भस्म हो जाओगे।"

यह विचित्र बात थी कि विनता को उसके पुत्र ने शाप दिया था और कद्रू ने अपने पुत्रों को शाप दे डाला।

पितामह ब्रह्मा ने कद्रू का कठोर शाप सुना तो मन ही मन कुछ प्रश्न हुए। बात यह थी कि धरती पर सर्पों की संख्या बहुत बढ़ गई थी और प्रजा के लिए संकट पैदा हो गया था। इस शाप से सर्प विनाश की भूमिका तैयार हो गई थी।

कालकुट जैसे बिषैले सर्प अपने विषदन्तों से लोगों को काटते फिरते थे। 'जो दूसरों को दुःख देते हैं, उन्हें भगवान से दण्ड अवश्य मिलता है' यह सोचकर विधाता ने कद्रू के शाप का समर्थन किया।

फिर उन्होंने महर्षि कश्यप को बुला कर समझाया, "महर्षि, आपके द्वारा लोगों को डसने वाले सर्प बड़ी संख्या में उत्पन्न हो गए हैं। ये बड़े लम्बे, शीघ्रगामी और विषैले हैं। इन्हें आपकी पत्नी, इनकी माता ने शाप दिया है। आप इसके लिए उस पर क्रोध न करें। यज्ञ में सर्पों का सम्भावित विनाश आपके ज्ञान-नेत्रों से छिपा नहीं है।" यह कह कर विधाता ने महर्षि कश्यप को सर्प विष उतारने की विद्या सिखा कर विदा किया।

× × ×

माता कद्रू के द्वारा भाइयों को शाप देने से, कर्कोटक नामक नाग को बड़ा दुःख हुआ।

उसने मां कद्रू के पास जाकर कहा, "माता, तुम निश्चिन्त रहो। मैं तुम्हें शर्त में विजयी बनाऊंगा। मैं उच्चैःश्रवा की पूंछ के ऊपर पूरी लम्बाई में लिपट जाऊंगा और उसकी पूंछ काली दिखाई देने लगेगी।

कद्रू ने कहा, "पुत्र ! मैं भी यही चाहती हूं।"

दूसरे दिन सूर्योदय होने पर कद्रू और विनता दोनों बहनें बड़े उत्साह से उच्चैःश्रवा घोड़े को पास जाकर देखने के लिए निकलीं जिससे पता चले कि कौन शर्त जीती और कौन हारी।

× × ×

उधर कद्रू के नाग-पुत्र माता की मनोकामना पूरी करने के लिए काले रंग के बाल बनकर उच्चैःश्रवा की पूंछ में लिपट गए।

उन्हें भय था कि यदि हमने आज्ञा का पालन न किया तो हमें भी यज्ञाग्नि में भस्म होने का शाप मिल जाएगा। उन्हें यह भी आशा थी कि माता को प्रसन्न करके हम अपने दूसरे भाइयों को भी शाप मुक्त करा लेंगे।

कद्रू और विनता सागर के ऊपर से, आकाश मार्ग से अपनी शर्त को दोहराती हुई उच्चैःश्रवा घोड़े के पास पहुंचीं।

देवताओं के उस श्रेष्ठ घोड़े पर दोनों की दृष्टि एक साथ पड़ी। घोड़ा उन्हें दुग्ध धवल किन्तु काली पूंछ वाला दिखाई दिया। घोड़े की पूंछ को देखते ही विनता का चेहरा काला पड़ गया। उसे पैरों के नीचे धरती सरकती जान पड़ी। वह शर्त हार चुकी थी और शर्त बड़ी टेढ़ी थी। वह अपनी सौत की दासी बग गई थी।

कद्रू की चाल सफल हुई। उसने झूठ को सच करके दिखा दिया। दो घड़ी पहले की सगी बहनें और सपत्नियां अब एक स्वामिनी और दूसरी दासी बन चुकी थीं। कद्रू ने स्वामिनी के रूप में आज्ञा देते हुए विनता को दासी के काम करने को कहा।

विनता को यह सब स्वीकार करना पड़ा। वह आज्ञाकारिणी दासी बनकर कद्रू के समस्त कार्य करने लगी।

× × ×

ऊपर तेजपुंज गरुड़ जब आकाश में उड़े जा रहे थे, तो देवताओं ने समझा कि अग्निदेव हमारे ऊपर कुपित होकर हमें जलाने आ रहे हैं। वे तुरन्त अग्नि की शरण में गए और उन्हें प्रणाम करके बोले, "अग्निदेव ! हम से क्या अपराध हुआ है जो आपका तेजपुंज हमारी ओर बढ़ा चला आ रहा है। आप हमें भस्म तो नहीं कर डालना चाहते ?"

अग्निदेव ने उत्तर दिया, देवताओ ! आपको भ्रम हुआ है। आप जो समझ रहे हैं, वह बात नहीं है। ये महाबली गरुड़ हैं, जो मेरे ही समान तेजस्वी हैं। आप इन्हें अपना शत्रु न समझें। ये महर्षि कश्यप और विनता की सन्तान हैं। ये पक्षिराज नागों के लिए काल स्वरूप और देवताओं के कार्य साधक

हैं। दैत्यों और राक्षसों के ये परम शत्रु हैं। इन से डरने की आवश्यकता नहीं। चलिए, हम सब इनका दर्शन करें।

अग्निदेव को आगे करके देवता गरुड़ के पास गये और उनकी स्तुति करने लगे।

देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर गरुड़ ने अपने शरीर और तेज का संकोच कर लिया। वे देवताओं को अभयदान देते हुए अपने बड़े भाई अरुण के पास पहुंचे और उनको अपनी पीठ पर बिठा कर पिता के आश्रम से माता के घर की ओर चले गए जो कि सागर के उस पार था।

इसी समय सूर्य भगवान देवताओं पर कुपित हो गए और उन्होंने समस्त लोकों को अपने तेज-ताप से भस्म करने का निश्चय कर डाला।

बात यह थी कि सागर मन्थन के बाद जब मोहिनी रूप भगवान विष्णु देवताओं को अमृत पान करा रहे थे, राक्षस राहु देवताओं में बैठा अमृत पीने लगा। सूर्य और चन्द्रमा ने उसे पहचान लिया और देवताओं को बता दिया। भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से राहु का सिर काट डाला किंतु अमृत पान के कारण वह अमर हो चुका था, इस लिए मरा नहीं। किन्तु तब से उसने सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु अन्य देवताओं ने उनकी कोई सहायता नहीं की। सूर्य ने मन में सोचा, "मैंने राहु का भेद देवताओं के हित के लिए ही तो प्रकट किया था पर अब देवता उसके सन्ताप से मेरी रक्षा करने का कोई उपाय नहीं करते हैं। इस लिए मैं सम्पूर्ण लोकों को भस्मसात कर दूंगा।"

देवताओं को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने ब्रह्मा को बताया। वे बोले, "मुझे सब पता है। इसका उपाय मैंने पहले ही कर रखा है। महर्षि कश्यप के पुत्र अरुण को सूर्य का सारथी बना देने से सब ठीक हो जाएगा। वे उनके आगे बैठ कर उनके तेज को रोकेंगे भी और हरेंगे भी।

देवताओं की प्रार्थना पर गरुड़ ने अरुण को सूर्य का सारथी बनने भेज दिया।

× × ×

गरुड़ अपनी माता विनता के पास आ पहुंचे। माता को दासी के रूप में सेवा करते देख गरुड़ का मन बहुत खिन्न हुआ।

एक दिन अपने पुत्र गरुड़ के पास बैठी हुई विनता को बुला कर कद्रू ने कहा, "विनते! सागर की कोख में एक निर्जन नाग प्रदेश है। तू मुझे अपनी पीठ पर उठा कर वहां ले चल।"

विनता ने आज्ञा का पालन किया और कद्रू को पीठ पर उठा कर ले चली। माता की आज्ञा से गरुड़ भी नागों को अपनी पीठ पर उठा कर उनके साथ चल पड़ा।

पक्षिराज गरुड़ आकाश में सूर्य के पास-पास उड़ने लगे जिस से पीठ पर बैठे नाग गर्मी से झुलस कर मूर्छित होने लगे।

कद्रू ने देखा कि उसके पुत्रों को सौत का बेटा जान बूझ कर मारने पर तुला हुआ है। उसने इस विपत्ति से बचने के लिए देवराज इन्द्र की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी। कद्रू इन्द्र से वर्षा बरसाने की प्रार्थना करने लगी जिस से नागों का ताप शांत हो।

देवराज इन्द्र ने कद्रू की प्रार्थना स्वीकार की और आकाश को मेघाच्छान्न कर दिया। थोड़ी ही देर में वर्षा भी होने लगी।

झुलसते नागों को वर्षा से शांति मिली। कद्रू ने इन्द्र के प्रति आभार प्रकट किया। कुछ समय बाद वे सकुशल उस द्वीप में जा पहुंचे।

यह द्वीप विश्वकर्मा द्वारा निर्मित था। इसमें भीमकाय मगरों का निवास था। जब नाग वहां प्रविष्ठ हुए तो उन्होंने वहां लवणासुर को देखा। चारों ओर से समुद्र से घिरा हुआ यह द्वीप तट से टकराती लहरों से आर्द्र और रंग बिरंगे झुंड के झुंड पक्षियों के कलरव से गूंजित था। फूलों और फलों की इस द्वीप पर भरमार थी। लता-वृक्षों से और कमल पुष्पों से सुशोभित सरोवरों से यह द्वीप बड़ा मनोहारी लग रहा था। सुगन्धित वायु चमर डुलाता और पुष्प गिरा कर पुष्पवृष्टि करता सा प्रतीत होता था। नाग-मण्डली वहां बहुत प्रसन्न हुई।

कुछ समय पश्चात् नागों ने गरुड़ से कहा, "तुम आकाश में उड़ते समय धरती के सभी सुन्दर स्थानों को देखते रहते हो। अतः हमें किसी दूसरे ऐसे स्थान में ले चलो जहां निर्मल जल के सरोवर हों।"

गरुड़ चुप रहा। थोड़ी देर बाद उसने मां विनता से पूछा, "मां क्या कारण है कि मुझे नागों की आज्ञा का चाकरों की तरह पालन करना पड़ता है?"

विनता ने कहा, "बेटा, दुर्भाग्यवश मैं अपनी सौत की दासी हूं। इन नागों ने कद्रू के कहने से छल करके मुझे हराया है।"

यह सुनकर गरुड़ ने दुःखी होकर नागों से कहा, "नागो! मैं जानता हूं कि क्या करने से मेरी माता को तुम्हारी दासता से छुटकारा मिले।"

गरुड़ की बात सुनकर नागों ने कहा, "यदि तुम हमें अमृत लाकर दे दोगे तो तुम्हारी माता का दास्यभाव समाप्त हो जाएगा।"

गरुड़ ने कहा, "ठीक है।" फिर वह माता से बोला, "मां। मैं अमृत लाने के लिए जा रहा हूं किन्तु मेरे खाने-पीने की क्या व्यवस्था होगी, यह मैं जानना चाहता हूं।"

विनता ने कहा, "समुद्र के एक द्वीप में मांसभक्षी निषाद रहते हैं, उन्हें खाकर तुम अपनी भूख शांत करो और अमृत ले आओ। पर ध्यान रखना कहीं ब्रह्म हत्या न कर बैठना। कैसी भी विकट परिस्थिति हो, ब्राह्मण से द्रोह मत करना।"

यह समझाते हुए विनता ने पुत्र को यात्रा निर्विघ्न समाप्त करने और सफल मनोरथ होकर लौटने का आशीर्वाद दिया।

पक्षिराज सर्व प्रथम अपनी भूख मिटाने के लिए मांसभोजी निषादों के द्वीप में गए और उनका भक्षण किया पर फिर भी तृप्त नहीं हुए।

यहां से उड़ते हुए वे पिता महर्षि कश्यप के पास पहुंचे। उनका दर्शन और चरणस्पर्श किया। पिता द्वारा कुशल समाचार पूछने पर गरुड़ ने माता और भाइयों की कुशल बताते हुए कहा कि और तो सब ठीक है पर मुझे भरपेट भोजन नहीं मिल पाता है। मैं माता को दास्यभाव से

मुक्त कराने के लिए अमृत लाने जा रहा हूं। मैंने माता से भी भोजन के विषय में पूछा था पर उनके बताए भोजन से भी मेरी तृप्ति नहीं हुई। इसलिए आप ही बताइये कि मैं क्या खाऊं, जिससे मेरी भूख शांत हो ?

महर्षि कश्यप ने एक सरोवर को बताते हुए कहा कि उसमें एक विशालकाय कछुआ रहता है और एक हाथी उस कछुए को सूंड से पकड़ने का यत्न करता हुआ उसमें खड़ा रहता है। तुम उन दोनों को खाकर अपनी भूख शांत करो और अमृत प्राप्त करो। अमृत लाने के लिए तुम्हें देवताओं से युद्ध करना पड़ेगा। और मैं आशीर्वाद देता हूं कि उसमें तुम्हारी विजय होगी।

पिता की आज्ञा से गरुड़ ने उस सरोवर में जाकर एक पंजे में हाथी को और दूसरे में कछुए को पकड़ा और उड़ चला।

उड़ता हुआ वह अलम्ब तीर्थ में, मेरु गिरी पर पहुंचा। वह किसी वृक्ष की शाखा पर बैठकर हाथी और कछुए का भोजन करना चाहता था पर वृक्ष उसके पक्षों की वायु से कांप-कांप उठते थे।

वहीं एक विशाल वट वृक्ष था। उसने पक्षिराज गरुड़ को बैठने योग्य कोई वृक्ष खोजते देखकर कहा, "पक्षिराज ! यह जो मेरी सबसे बड़ी शाखा है आप इस पर बैठिए। यह आपके भार को सहन कर सकती है।"

उस वट वृक्ष के कहने पर विशाल आकार वाले पक्षिराज गरुड़ उस महान वृक्ष को कंपाते हुए उस शाखा पर जा बैठे। पर वह शाखा उनके बैठने से लगने वाले झटके को सह न सकी और टूट गई।

शाखा चरमरा कर गिरती इससे पूर्व ही गरुड़ ने देखा कि उस शाखा के साथ मुंह नीचे की ओर किए बालखिल्य ऋषि लटक रहे थे।

गरुड़ को चिन्ता हुई कि शाखा के टूटने से कहीं इन ऋषियों का वध न हो जाए। उसने तत्काल झपट कर वह शाखा चोंच से पकड़ली।

दोनों पंजों में हाथी और कछुआ और चोंच में वट वृक्ष की शाखा, लिए गरुड़ देर तक उड़ते रहे। अन्त में उड़ते-उड़ते वे गन्धमादन पर्वत पर जा पहुंचे।

वहां उन्होंने तपस्या में लीन पूज्य पिता कश्यप को देखा। कश्यप जी की दृष्टि भी अतुल तेजस्वी पुत्र गरुड़ पर पड़ी। उन्होंने शाखा से उल्टे लटके बालखिल्य मुनियों को भी देखा। फिर वे गरुड़ को समझाते हुए बोले, बेटा कोई दुःसाहस का काम न कर बैठना। दुःसाहस विपत्ति का कारण बन जाता है। सूर्य की किरणों का पान करने वाले बालखिल्य कुपित होकर तुम्हें शापाग्नि से भस्म न कर डालें।

फिर वे बालखिल्य मुनियों से बोले, "तपोधन महात्माओ ! गरुड़ का कार्य प्रजा के हित के लिए हो रहा है। इस महान कार्य के लिए आप इन्हें आज्ञा दें।"

महर्षि कश्यप के इन विनीत वचनों को सुनकर बालखिल्य उस शाखा को छोड़ कर तपस्या करने हिमालय में चले गए।

उनके चले जाने पर विनता पुत्र गरुड़ ने पिता कश्यप से अस्पष्ट वाणी में पूछा, क्योंकि मुंह में शाखा होने के कारण वे स्पष्ट नहीं बोल पा रहे थे, "भगवन ! मैं इस शाखा को कहां रखूं। कोई ऐसा स्थान बताइए जहां दूर-दूर तक मनुष्य न हों।"

कश्यप जी ने हिमाच्छादित एक पर्वत गरुड़ को बता दिया।

गरुड़ उस पर्वत की ओर उड़ चले और उस जगह पहुंच कर उन्होंने चोंच खोल कर वह शाखा गिरा दी। शाखा के गिरने से बड़े जोर का शब्द हुआ। पर्वत पर के अनेक वृक्ष टूट कर गिर पड़े।

तदन्तर गरुड़ ने उसी पर्वत की एक चोटी पर बैठकर उस हाथी और कछुए का भोजन किया।

यहां से वे सीधे देवधाम की ओर उड़ चले।

उधर देवधाम में अनेक अपशुकन होने लगे। देवराज इन्द्र के हाथ में उनका वज्र भय से जल उठा। उल्काएं गिरने लगीं। आंधी उठने लगी। बिना बादलों के बिजली कौंधने लगी और रक्त की वर्षा होने लगी। देवताओं ने अम्लान कमलों की जो मालाएं पहन रखीं थीं वे मुझनि लगीं।

भयभीत देवराज इन्द्र आचार्य वृहस्पति के पास जाकर बोले, "गुरुदेव ! ये भयंकर उत्पात क्यों हो रहे हैं ? मुझे ऐसा कोई शत्रु दिखाई नहीं देता जो हमारे साथ युद्ध कर सके।"

देवाचार्य वृहस्पति बोले, "देवराज इन्द्र ! तुम्हारे प्रमाद और अपराध के कारण तथा बालखिल्य महर्षियों के तप के प्रभाव से विनतानन्दन कश्यप मुनि के पुत्र गरुड़ अमृत का अपहरण करने के लिए यहां आ रहे हैं। वे बलशाली स्वेच्छानुसार रूप धारण करने वाले और अपने मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ हैं। वे असंभव कार्य को भी सम्भव कर सकते हैं। मैं समझता हूं कि वे अमृत को अवश्य हर ले जाएंगे।

आचार्य वृहस्पति की बात सुनकर देवराज इन्द्र ने अमृत की रक्षा करने वाले देवताओं को सावधान करते हुए कहा, "अमृत के रक्षको ! पक्षिराज गरुड़ अमृत का अपहरण करने आ रहे हैं। आचार्य जी का कहना है वे बड़े पराक्रमी हैं।"

अमृत के रक्षक देवता देवराज इन्द्र की बात सुनकर आश्चर्य में पड़ गए और अमृत के चारों ओर घेरा डाल कर खड़े हो गए। महाप्रतापी इन्द्र भी हाथ में बज्र थामें वहां अमृत की सुरक्षा के लिए डट गए।

शीघ्र ही होने वाले युद्ध की सम्भावना से देवताओं ने कवच पहन लिए और अस्त्र-शस्त्र धारण कर लिए। देवताओं ने प्रण किया कि हम पूर्ण रूप से अमृत की रक्षा करेंगे।

देवता अभी-अभी युद्ध को तैयार हुए थे कि गरुड़ आ पहुंचा।

फिर क्या था। देवता तो उनके उग्र रूप को देखकर ही कांपने लगे। भय से उन्हें कंपकंपी होने लगी और उनके शस्त्र आपस में ही टकराने लगे।

रक्षकों के प्रमुख विश्वकर्मा साहस करके घड़ी भर गरुड़ से लड़े पर इतने में ही अधमरे होकर गिर पड़े।

गरुड़ ने अपने पक्षों की वायु से धूल उड़ा कर देवलोक में घना अन्धकार कर दिया। देवताओं को धूल के कारण कुछ भी दिखाई नहीं देता था। पर गरुड़ तो सब कुछ देख रहा था। उसने अपने पंजों, चोंच और पंखों की मार से देवताओं के अंग-अंग विदीर्ण कर डाले।

देवेन्द्र ने इस स्थिति का सामना करने के लिए वायुदेव को बुलाया और आज्ञा दी कि इस धूल को तुरन्त परे हटाओ।

वायुदेव ने धूल उड़ादी। देवताओं को सब कुछ दिखाई देने लगा। अब तो देवता भी अपने अस्त्र-शस्त्र सम्भालकर गरुड़ पर टूट पड़े। पर गरुड़ इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। फिर पक्षिराज ने क्रोध के साथ अपने पंखों को फटकारा और छाती से धक्का मार कर सारे देवताओं को धूल चटा दी।

अब तो देवताओं में भगदड़ मच गई। गरुड़ की तीखी चोंच और पैने पंजों से घायल देवताओं के शरीर से रक्त की धार बहने लगी।

देवता प्राण बचाकर भागते जाते थे और थोड़ी दूर भाग लेने पर पीछे देख लेते थे कि गरुड़ पीछे तो नहीं आ रहा है।

देवता भाग रहे थे और यक्ष गरुड़ से युद्ध करने को बढ़ रहे थे। गरुड़ ने इन नौ यक्षों को भी यमपुर पहुंचा दिया।

सब को मार काटकर गरुड़ अमृत कुंभ की ओर बढ़े तो देखा कि उसके चारों ओर अग्नि की लपटें उठ रही हैं।

अब गरुड़ ने आठ हजार एक सौ मुख प्रकट करके नदियों का पानी पी लिया और तुरन्त लौटकर वह पानी आग की लपटों पर उडेल दिया। आग बुझ गई। अब पक्षिराज ने अपना रूप छोटा कर लिया और अमृत कुंभ को लेने झपटे। पर अमृत कुंभ के चारों ओर एक लौह चक्र बड़ी तेजी से घूम रहा था। उसके चारों ओर तीखी धार वाले छुरे लगे हुए थे। यह चक्रयन्त्र देवताओं ने अमृत कुंभ की रक्षा के लिए ही बनाया था।

गरुड़ कुछ देर तक ध्यान पूर्वक इस चक्र को देखते रहे कि कैसे इसमें प्रवेश किया जाए। फिर अपने शरीर को संकुचित करके वे बड़े वेग से चक्र के अरों के बीच के स्थान से पार निकल गए।

पर अभी भी अमृत सुलभ नहीं था। दो भयंकर विषधर उसकी रक्षा के लिए नियुक्त थे। वे ऐसे विषैले थे कि उनके देखने मात्र से विष का संचार हो जाता था।

गरुड़ ने उनकी आँखों में धूल झोंककर उन्हें अन्धा बना दिया और पंजों और चोंच से उन्हें नोचने लगे फिर उन दोनों सर्पों के बीच में से काटकर दो टुकड़े कर डाले।

अब वह अमृत कुंभ को उठाने के लिए झपटे। लौह चक्र को तोड़कर वह अमृत कुंभ को उठाकर ले चले।

गरुड़ ने स्वयं अमृत नहीं पिया। वह तो अमृत देकर माता को दास्यभाव से मुक्त कराने के इच्छुक थे।

आकाश मार्ग में उनकी भेंट भगवान विष्णु से हो गई। भगवान विष्णु गरुड़ के इस स्वार्थ रहित पराक्रम से बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने गरुड़ से कहा, "मैं तुम्हें वर देना चाहता हूं।"

गरुड़ ने कहा, "प्रभो ! मैं आपके भी ऊपर (ध्वजा में) स्थित होऊं और मैं अमृत पिए बिना ही अमर हो जाऊं।"

भगवान विष्णु ने एवमस्तु कह कर गरुड़ की मनोकामना पूरी की।

फिर गरुड़ ने भगवान विष्णु से कहा, "प्रभो ! मैं भी आपको वर देना चाहता हूं। आप भी कोई वर मांगें।"

विष्णु भगवान ने गरुड़ से अपना वाहन (सवारी) होने का वर मांगा और गरुड़ ने स्वीकार कर लिया।

देवराज इन्द्र ने देखा कि सारे प्रयत्नों के होते भी गरुड़ अमृत का अपहरण करने में सफल हो गया। इसमें उन्हें समस्त देवताओं का अपमान लगा। क्रोध में भर कर देवराज ने गरुड़ पर बज्र से प्रहार किया।

बज्र प्रहार की तनिक भी परवाह न करते हुए गरुड़ ने कहा, "देवराज ! जिन महर्षि की हड्डियों से यह बज्र बना है, उनका सम्मान करने के लिए और आपका सम्मान करने के लिए मैं अपना एक पंख जिसका आप कहीं और छोर नहीं पा सकेंगे, त्याग देता हूं। यह कह कर गरुड़ ने अपने डैने में से एक पंख गिरा दिया। उस सुन्दर पंख के कारण गरुड़ का नाम सुपर्ण पड़ा।

देवराज इन्द्र पक्षिराज पर बज्र का कोई प्रभाव न होते देखकर आश्चर्य चकित रह गए। उन्होंने गरुड़ से प्रस्ताव किया, "मैं तुम्हारे साथ दृढ़ मैत्री करना चाहता हूं।"

गरुड़ ने मैत्री का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दोनों एक दूसरे के बल-पराक्रम से जब परिचित हो चुके तो देवराज ने कहा, "मित्र यदि तुम्हें इस अमृत की आवश्यकता नहीं है तो इसे लौटा दो। जिन्हें तुम यह अमृत देना चाहते हो, वे इसे पीकर अमर होकर हमें बहुत कष्ट देंगे।"

गरुड़ ने कहा, "मित्र ! मैं एक विशेष प्रयोजन से इसे ले जा रहा हूं। मैं इसे किसी को पीने के लिए नहीं दूंगा मैं जहां इसे रखूंगा, तुम इसे वहां से उठा कर ले आना।"

यह सुनकर इन्द्र प्रसन्न हुए। उन्होंने गरुड़ से वर मांगने को कहा।

गरुड़ को किसी वर की आवश्यकता नहीं थी पर मित्र का मान रखने के लिए उन्होंने वर मांगा कि सर्प मेरा भोजन हो जाए। इन्द्र ने 'तथास्तु' कह कर वरदान दे दिया।

गरुड़ अमृत लेकर माता विनता के पास पहुंचे और अमृत ले आने का समाचार सुनाया। फिर वे सर्पों से बोले, "मैं तुम्हारे लिए वचनानुसार अमृत ले आया हूं। इसे कुशाओं के ऊपर रख रहा हूं। तुम सब स्नान और स्वस्तिवाचन से पवित्र होकर इसका पान करो। अब अपने वचन के के अनुसार मेरी माता को दासी के कार्य से मुक्त करो।"

सर्पों ने पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार सारी बातें मान लीं।

सर्प तो स्नान के लिए चले गए और इन्द्र अमृत को लेकर फिर स्वर्ग में जा पहुंचे।

सर्प लौट कर आए तो अमृत वहां नहीं था। सर्पों ने यह सोचकर सन्तोष कर लिया कि हमने भी कपट किया था इसलिए किसी ने हमारे साथ कपट किया।

फिर उन्होंने सोचा कि यहां कुशा पर अमृत रखा था, सम्भव है कुशा में उसका कुछ अंश हो, यह सोच वे कुशा को चाटने लगे, जिससे उनकी जिह्वा बीच में से चिर गई।

पक्षिराज गरुड़ माता विनता को स्वतन्त्र कराकर आनन्द से रहने लगे।

योग्य सन्तान अपनी जननी और जन्मभूमि को कभी परतन्त्र नहीं रहने देती।

के–४७, नवीन शाहदरा
दिल्ली–११००३२

बनजार के लोक-गीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

—बाल कृष्ण ठाकुर

जब से लोक-गीतों के प्रति यह प्रवृति मेरे मस्तिष्क में पैदा हुई तब से ही मैं यह सोच रहा हूं कि इन लोक-गीतों का लोक-साहित्य में महत्व क्या है और ये लोक गीत कहां तक लोगों की इच्छाओं, भावनाओं और वृत्तियों का सार्थक वहन करते हैं ? क्या इन गीतों का समाज में कुछ महत्व है। प्रश्न उठता है कि गीतों की समाज में आवश्यकता ही क्यों पड़ी ? इनका अभ्युदय कहां से हुआ और क्यों ? उत्तर मिलेगा प्राचीन, अर्वाचीन, धार्मिक ग्रन्थ और स्मृतियां। आइए, इतिहास खोजते हैं। यहां यह कहना कतिपय समीचीन होगा कि मनुष्य जाति जब प्राचीन समय में कुटुम्बों के रूप में वनों में रहा करती थी (या दूसरी शब्दावली में यों कहें कि 'पुरातन साम्यवाद' के रूप में) और जब मनुष्य जाति में थोड़ी बहुत चेतना का उदय हुआ था, तब वे दुःख सुख की अनुभूति को व्यक्त करने के लिए भांति-भांति के स्वर भावावेश में अपने मुख विदर से निकाल लिया करते थे। यही ध्वनियां सभ्यता के विकास के साथ-साथ और अधिक विकसित होकर सुन्दर स्वरों में परिवर्तित हुईं। वाद्य-यन्त्रों के अन्वेषण के पश्चात् यह स्वर और अधिक विकसित हुए। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि इस विकास और परिवर्तन की निरन्तर प्रक्रिया से ही 'संगीत,गायन और वादन' का उदय हुआ है। कहने वालों ने इस कला को ईश्वर प्रदत्त भी कह दिया है, परन्तु यह मानना समीचीन नहीं। ऋग्वेद के उल्लेखानुसार कुछ रूढ़िवादियों ने इसे मान्यता प्रदान की है, परन्तु आलोचनात्मक दृष्टि से देखने का प्रयास शायद उन से नहीं हुआ। प्राचीन ऋषियों-मुनियों के वाद्य-यन्त्रों और संगीत-कला से इस बात का परिचय मिलता है कि सचमुच ही यह वरदान रहा होगा। परन्तु मैं यह मानने के लिए कदापि सहमत नहीं। विशेषकर आज के ज्ञान-विज्ञान के युग में इस प्रकार के मिथक को स्वीकारना संगत नहीं।

आज जितनी विकट समस्या गीतों के उद्भव और विकास की है, उससे कहीं अधिक जटिल समस्या ईश्वर की है। ईश्वर है या नहीं, यह अनुसन्धान का विषय है। तो फिर गीतों का किस्सा भी अनुसन्धानाधीन है। 'भाषा विज्ञान' का इतिहास बताता है कि "मनुष्य में वाणी या भाषा का विकास हुआ है न कि यह ईश्वर प्रदत्त है। यदि भाषा ईश्वर प्रदत्त होती तो संसार के सभी मनुष्यों की भाषा एक समान होती, जबकि अन्य वन्य और पालतू पशुओं की वाणियां समान हैं।" परन्तु यहां भाषा वैज्ञानियों ने वर्णमाला या वर्णों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। वास्तव में संसार की सभी भाषाओं के वर्ण किसी सीमा तक मिलते जुलते हैं। जैसे 'ब' यह ध्वनि ससार की सभी भाषाओं में मिलेगी। यह बात अलग है कि इसका प्रयोगिक अर्थ भिन्न-२ देशों में भिन्न-२ निकाला जाता होगा। वास्तव में यह विकास का परिणाम है। सभी देशों में ये ध्वनियां देशकाल और वातावरण के अनुसार विकसित हुईं। ठीक इसी प्रकार 'गायन और वादन' का भी विकास हुआ।

बनजार लिखने से मेरा अभिप्राय: उस घाटि से है जो अपने आप में नवीन है। जिला कुल्लू की एक लघु तहसील होने के कारण हम इसे बिल्कुल भिन्न तो नहीं मान सकते परन्तु फिर भी भाषायी विभिन्नता और वेश-भूषा की भिन्नता के कारण यहां लोक-साहित्य में भी भिन्नता है। यदि 'जलोड़ी से लारजी, तक के गीतों का समीक्षात्मक अध्ययन लिखा जाता तो शायद अधिक समीचीन होता। क्योंकि जलोड़ी की पहाड़ी बनजार और आनी का विभाजन करती है और इधर लारजी की बाईं ओर मण्डी जिला पड़ता है और दाईं ओर ब्यास के किनारे से कुल्लू तहसील पड़ती है। जिस कारण बनजार का लोक-साहित्य आनी, कुल्लू और मण्डी के सीमावर्ती क्षेत्रों से भिन्न है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो मण्डी जिला की तहसील चच्योट का उत्तरी और पूर्वी भाग यदि लोक-साहित्य की दृष्टि से बनजार के साथ मिला दिया जाए तो यह अधिक संगत होगा। भाषा-वैज्ञानिक सर्वेक्षण के आधार पर भी ये क्षेत्र समानान्तर हैं।

बनजार गीतों की महत्वपूर्ण स्थली है। जिस प्रकार गायन और वादन का स्रोत ऋग्वेद में ढूंढ़ा जा सकता है, ठीक उसी प्रकार लोक-गीतों की बनावट और धुन का स्रोत 'जिला कुल्लू में' तहसील बनजार में खोजा जा सकता है। श्री लालचन्द जी प्रार्थी ने अपनी पुस्तक 'कुलूत वंश की कहानी' में सराज (बनजार) की नाटी के विषय में प्रशंसा सहित लिखा है कि सराज की नाटी कुल्लू जिला में प्रसिद्ध है। नाटी का वास्तविक रूप सराज में ही मिल सकता है। और साथ ही (नाटी गीतों के बिना नहीं होती) गीतों पर भी अप्रत्यक्ष प्रकाश पड़ जाता है। यह कहां तक सत्य है या कहां तक नहीं। लोक-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन और जन-सम्पर्क पर आधारित है। आइए गीतों का इतिहास खोजते हैं। बनजार के गीतों में, गीतों का वह प्राचीन रूप आज भी सुरक्षित है जो रामायण और महाभारत की चौपाइयों और दोहों में छपा है। मुझे जाड़े की वह ठण्डी-तीखी रात अब भी याद है जब कि सौ–पच्चास आदमी बैठे कृष्ण-लीला सुन रहे थे परन्तु जिस जिज्ञासा से वे सुन रहे थे उस जिज्ञासा से शायद मैं नहीं सुन रहा था क्योंकि नींद के मन्द-मन्द झौंके मुझे सुला रहे थे। परन्तु जब-जब मुझे सब की मिली जुली ध्वनि एक लम्बी लय के साथ सुनाई दे रही थी, तो मुझे लग रहा था कि सुनने वालों को गाने के मध्य इतना आनन्द आ रहा था कि भावावेश में वे प्रथम तुक के साथ अन्तिम तुक जोड़ रहे थे। विशेष प्रसङ्गों पर 'शाबास', 'ठीक' इत्यादि शब्द बोल रहे थे :

"खड उठ ये वासुदेवा कनेटे लागी तनाटा।
हाथे पड़ी कामणू द्वारे जबरशीला।"

ऐसे प्रसङ्गों में प्रसन्न होकर वे तुक जोड़ रहे थे। ठीक इसी प्रकार रामायण भी चलती है। छन्दों दोहों और चौपाइयों को गाया जाता है :

"लंका वे लागा खेग्र बणदा बान्दर लागे कामा।
रामा – रावणा रा जुद होऊ रावन पाऊ लामा।"

इस प्रकार श्रीराम और श्रीकृष्ण के प्रति अगाध भक्ति का परिचय हमें लोगों की दन्त-रामायण और दन्त कृष्ण-लीला से मिलता है।

समय के परिवर्तन के साथ-साथ भक्तिपरक गीतों का क्षेत्र भी विस्तार हुआ। रामायण और महाभारत के गीतों के समान आजकल नवीन भक्ति गीतों का उद्भव हुआ। मीरांबाई के समान

'प्रिय और प्रेमिका', 'पति–पत्नी' जैसा सम्बन्ध समझ कर आजकल समाज में विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति में गानों की भरमार है। शेषनाग की स्तुति में :

"म्हारे वेऊआ हे शेषनागा, तेरी जय जयकारा।
ग्यारहे आऊआ खमारड़े यारा बारहे शुरूपताला।"

देव स्तुति की इस शृंखला के साथ इतिहास भी जुड़ा है। ऐतिहासिक सन्दर्भ को लेकर, उनके उपलक्ष में आज भी परम्परा के अनुसार बनजार के विभिन्न स्थानों पर इस प्रकार के प्रदर्शन इत्यादि किए जाते हैं। सागर-मन्थनके उपलक्ष में आज भी बनजार में राक्षसों के विरुद्ध और देवताओं की स्तुति में प्रदर्शन किया जाता है जो कि फाल्गुन के महीने में किया जाता है। लोगों की यह धारणा है कि पौष में देवी-देवता लड़ाई (सागर-मन्थन) के लिए जाते हैं और दो महीने पश्चात् यानि फाल्गुन में वापिस आते हैं। इस उपलक्ष में फाल्गुन में स्थान-स्थान पर त्यौहार मनाए जाते हैं जिस का मुख्य उद्देश्य राक्षसों का विरोद्ध करना और देवताओं की स्तुति करना है। स्थानीय बोली में इसे 'फागुली' कहा जाता है। लोग लोक-नृत्य की मुद्रा में, मुंह में लकड़ी का बनावटी मुंह लगा कर (जो राक्षसों के मुंह से भयंकर बनाया होता है और उसे 'मण्डयाला' कहा जाता है) राक्षसों के विरूद्ध बोलते हैं :

ढाठू मण्डयाला टेशु ओ —
ढाठु मण्डयाला टेशु ऽ ऽ ऽ —।
नारायणा निकता वेशु ओ
नारायणा निकता वेशु — ऽ ऽ —।
राक्स आसा केहड़े ओ —
शुपा जेहे कनेटे ओ कुरूड़ू जंहे पेटे,
गबर भरने पेटे ओ — ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ —।

(यहां यह स्मरण रहे कि यह 'फागुली' लाहौल स्पीति की फागुली से एक दम भिन्न है) इसी प्रकार लंका काण्ड, दीपावली इत्यादि के उपलक्ष में भी गीतों की कोई कमी नहीं।

भक्ति परक गीतों के अतिरिक्त प्रणय-प्रधान गीतों का समाज में बोलबाला है। वस्तुतः प्रणय-सम्बन्ध समाज का नैसर्गिक गुण है तथापि इस सम्बन्ध में आज बनजार के लोक-साहित्य में प्रगतिशील गीतों का अभाव रहा है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्राचीन गीत-शृंखला से आज की गीत-शृंखला किसी हद तक प्रगति की ओर बढ़ चुकी है। समाज में बहुमत प्रणय-प्रधान गीतों को महत्व देता है और साथ ही रस की अनुभूति कराने के लिए इन्हें अनिवार्य समझते हैं। उनकी यह उक्ति कहां तक सत्य है, यह उनके परिचय से पता चल सकता है। हां हिन्दी साहित्य के आदि कालीन कुछ अंश, रीति काव्य, संस्कृत साहित्य में 'शकुन्तला और दुष्यन्त' और अंग्रेजी-साहित्य में 'रोमानीयत' इसके सशक्त उदाहरण हैं। ठीक इसी प्रकार हमारे लोक-साहित्य में भी यह आन्दोलन सदियों पहले से चला आ रहा है। समय के अनवरत प्रवाह के साथ इस आन्दोलन में भी उतार चढ़ाव आते रहे। पहले जहां ये सम्बन्ध साधारण भाषा में हुआ करते थे वहां आज ये अलंकारों के माध्यम से किये जाते हैं :

हरी डालिए केम्टीए ऐ सदा हरे री हरी भाइयों—
पाके फल छुटे उच्छटे लो गोघे केम्टुहरा डालिए
हरी डालिए............ ।

(जवानी को हरी डाली की संज्ञा दी गई है । 'पाके फल' जवानी की परिपक्व अवस्था और 'केम्टुहरा' जवानी की अपरिपक्क अवस्था को कहा गया है ।) वास्तव में इन गीतों का लोक-साहित्य में कितना महत्व है यह जन सम्पर्क पर निर्भर है । परन्तु यहां यह कहना अनुचित नहीं है कि आज के मानव का मन यौन-परिकल्पनाओं से भरपूर है । ये परिकल्पनाएं बहुत कुछ ज्ञान-विज्ञान और टेक्नालाजी के प्रभावों से उत्पन्न है और बहुत कुछ स्वयं उसके मन से उत्पन्न हैं, जिस कारण वह आज गायन की ओट में जाकर मन बहलाव करता है । यह परम्परा आज से हजार वर्ष पूर्व रही होगी । परन्तु किसी दूसरे रूप में, और आज जो स्थिति है वह अपने में नवीन है विकसित है । हां जब कभी भी विकसित लोक साहित्य व संस्कृति का प्रश्न उठता है तो तनिक सोचने के लिए विवश होना पड़ता है । वास्तविकता यह है कि आज प्रणय-सम्बन्धी गीतों में आधुनिक पीड़ित मानव के पीड़ित हृदय की गहरी टीस आधुनिक भाव वृद्धि के साथ अभिव्यक्त होती है, इस वृद्धि के साथ अस्तित्व बोद्ध का प्रश्न जुड़ा है । सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो आज के हजार वर्ष पूर्व भी यह भाव लोक साहित्य में निहित था, परन्तु पिछड़े रूप में, जिसे खोजा तो आसानी से जा सकता था परन्तु लोक-साहित्य में उसका कोई महत्व नहीं था । आज स्थिति इसके प्रतिकूल है :

म्हारे लाँमरा तुलसीरामा बांशा बाई रा गो पाणी ।
होर देबकु थीही शोभली यारा घख गई गला री गाणी ।

('बांशा बाई रा पाणी' व्यक्तित्व जो पिछड़ा हुआ हो जिसमें जीवन के प्रति प्रतिस्पर्धा की भावना नीहित है । अस्तित्व के प्रति जिस में भाव बौद्ध है ।)

जहां तक राजनीति और देश भक्ति का सम्बन्ध है इस दृष्टि से भी समाज में लोक-गीतों का अधिक महत्व है । लोगों में जागरुकता लाने के लिए सजग नेताओं के अभिभाषणों की अपेक्षा इन गीतों का महत्व अधिक है । विशेषकर युद्ध के दिनों में और राजनैतिक उथल-पुथल के दिनों में इस स्थिति का पता चलता है । गीतों की इस प्रकार की स्थिति प्राचीनकाल से चली आ रही है । अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजों का विरोध लोग इन्हीं लोक-गीतों के माध्यम से किया करते थे । 1947 में जब भारत आजाद हुआ तो आजादी के उपलक्ष में गीतों की समाज में भरमार लगी । 1962 का वह भंयकर दिन जब चीनी सैनिकों ने धोखे से अधमरे भारत पर आक्रमण किया तो उसने किसे नहीं चौंधियाया । शायद मूक हृदय भी प्रवाहित हुआ होगा । देश में अव्यवस्था फैल गई । सामान्य जन जीवन खतरे की धार पर स्थगित हो गया । आवश्यकता थी नागरिकों में देशभक्ति की भावना जगाने की । नगरों इत्यादि में यह कार्य आसानी से हो सकता था, परन्तु गांवों में इसका होना अत्यधिक कठिन है । गांव में मात्र गीतों की लय ही इस बात का वहन करती है । 1962 के आक्रमण के कारण देश में जब उत्कृष्ट संकट पैदा हो गया था तो हमारे ग्रामीणों में यह चेतना पैदा हुई कि देश की रक्षा करना अनिवार्य है, परम कर्तव्य हैं । आवश्यकता इस बात

की थी कि जन-जन में इस भावना का प्रचार कैसे किया जाए। तब ही देश-भक्ति के एक गीत की सृष्टि हुई :

सच्चा खोंजे लाहूली भीणे, चीना वे रास्ता किये।
कान्हा परेन्दे रफला चकणी, मसाला पाऊणा खिस्से।

इसी प्रकार काश्मीर समस्या के विषय में भी गानों की अधिकता है। शायद लोगों को काश्मीर से इतना अधिक प्रेम ही है कि वे सिर देने के लिए तैयार हैं परन्तु काश्मीर नहीं। उनकी यहां तक धारणा है कि आवश्यकतानुसार सेना में भर्ती होना पड़े, सिर चला जाए, परन्तु काश्मीर के साथ खिलवाड़ नहीं होना चाहिए :

श्रासा भरती हूणा श्रो काश्मीर नांई छाड़ना।
श्रासा श्रपना जिऊड़ू दिणा श्रो काश्मीर नांई छाड़ना।
श्रासा भारती हूणा श्रो काश्मीर नांई छाड़ना।

कहने की आवश्यकता नहीं रहती कि लोक-गीतों का समाज में कितना महत्व है। दैनिक जीवन के भी कुछ पहलुओं में गीतों का आश्रय लिया जाता है। दु:ख-सुखानुभूति इत्यादि का माध्यम ये ही लोक-गीत हैं। कहने का यह तात्पर्य नहीं कि गीतों के अतिरिक्त इस प्रकार की अनुभूतियों को व्यक्त करने का अन्य साधन ही नहीं हैं परन्तु यहां यह स्मरण रहे कि लोक-गीतों पर ये अनुभूतियां बहुत कुछ आधारित हैं।

अन्त में मैं इतना कह देना आवश्यक समझता हूं कि लोक-गीतों का लोक-साहित्य में अधिक महत्व है। यदि इस प्रकार के लोक-गीतों का उदय समाज में नहीं होता तो शायद समाज में पूर्णत: शुष्कता फैल जाती। आज ग्रामीण संस्कृति में लोक-गीतों का प्रमुख स्थान है जो शहरी संस्कृति में चल-चित्रों ने लिया है। परन्तु शहरी संस्कृति में ये गीत कहीं अधिक प्रगतिशील हैं। जिनमें यथार्थ चित्रण और जीवन का वास्तविक रहस्य छुपा है। आशा है कि कभी यह साहित्य संग्रहित रूप में सच्चाई स्पष्ट करेगा और ग्रामीण संस्कृति को जीवित रखने के लिए यह अनिवार्य है।

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समर हिल, शिमला-५

महासू—एक परिचय

—भाग्यवती शर्मा

अनेक लेखकों ने हिमाचल की पावन कर्मभूमि को 'ऋषि-मुनियों का आश्रम, संस्कृतिक सम्पदा, देवी देवताओं की भूमि' जैसी उपमाओं से सुसज्जित किया है। हिमाचल के भोले-भाले नर-नारियों से लेकर श्वेद् हिम तुंग शिखरों तक देवी-देवताओं का वास है जो ईश्वर के भेजे प्रतिनिधि के रूप में धरती के इस नैसर्गिक प्राकृतिक खण्ड पर वास करते हैं। पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने तो स्पष्ट लिखा है, "हिमाचल की माटी में देवताओं की अनूठी और स्पष्ट गन्ध है।" हिमाचल में विद्यमान देवी देवताओं के मन्दिर इसी बात के प्रतीक हैं। आइये एक और प्रमाण के माध्यम से मैं आपका परिचय एक ऐतिहासिक लोक-गीत के नायक से करवाती हूं :

.........गढ़ौ रै बांठडू
छोरू खी गुड़ो रे भेले......
खाड़् देऊ लांकड़े
दुर्गे छेले .....।

[लोक-नायक कहता है—देवी, यदि मेरी मन मांगी मुराद पूर्ण हो गई, तो मैं गांव भर के बच्चों को गुड़ की भेली बांट कर मुंह मीठा करा दूंगा। और देवी, तुम्हारी पूजन में छेली (बकरी का बच्चा) भेंट कर पूर्ण करूंगा।] देखा आप ने......कितनी श्रद्धा...आस्था है इस लोकनायक में...अपने आराध्य देव के प्रति।

हिमाचल प्रदेश में देवी देवताओं के अतिरिक्त देवता महासू का नाम भी अग्रगण्य है। महासू देवता का पूज्य एवं मान्य धरातल विशेषतयः जिला शिमला (ऊपरी) तथा जिला सिरमौर का आधा भाग है। जहां आज भी महासू देवता के मन्दिर अनूठी कलाकृति, धार्मिक आस्था का प्रमाण लिए लोगों के कुल-देव के रूप में मौजूद है।

ऐसा माना जाता है कि महासू देवता सूर्यवंश खानदान से सम्बन्ध रखते थे। इनके तीन और भाई देवता चालदा, पवासी और शिडगुल थे। इस तथ्य का उल्लेख प्रसिद्ध ऐतिहासिक 'माधुसिंह' के लोक-गीत में मिलता है :

.... रे
चार गाणे म्हासू
गाणे चारिये भाए रे......।

प्राचीन काल में न्होल (नौल्ल) के राजा की दो रानियां थीं, एक गढ़वाल से थी और दूसरी स्थानीय ठाकुराई खानदान से। संयोग से राजा के कोई सन्तान न थी। स्थानीय भाषा में यहां नटराज बन रहा था। बड़े बूढ़े, सभी लोग इस बात से चिन्तित थे, राजा का तो कहना ही क्या ? क्योंकि समय राजे रजवाड़ों का था इस लिए राज दरबार में बुजुर्गों, विद्वानों और कारदारों की सभा बुलाई गई। आखिर तक जब इस समस्या का कोई समाधान न निकला, तो ब्राह्मणों की विद्या का सहारा लिया गया। पण्डित ने कहा—राजन ! काश्मीर में चार प्रतापी देवता हैं सम्भवत: वही तुम्हारी समस्या का समाधान कर सकते हैं। राजा मन्त्री के साथ काश्मीर पहुंचे। महासू देवता ने प्रकट (छेर, ओतर कर) हो कर राजा से आने का कारण पूछा। राजा बोले, "देव ! तुम्हारी कृपा से, सोना-चांदी सभी कुछ तो माकूल है मेरे पास। किसी चीज की आवश्यकता नहीं। हां, मेरे बाद...राज्य का दीप बुझने वाला है...। मेरे राज्य में अब नटराज होने वाला है। मुझे अब आवश्यकता है तो केवल...सन्तान की यदि मेरी यह कामना पूर्ण हो गई तो मैं तुम्हें रियासत में थान (जगह) दूंगा।" देवता ने राजा को बन्द (कोई अपनी चीज) दिया। अपने सात दिन के आवास के मध्य राजा ने देवता की परीक्षा की राजा ने अपने आवास स्थान पर सूखे वृक्ष (वट) को देख कर देवता को विचार दिया—'महासू देवता इस सूखे वृक्ष की शाखाओं पर अंकुर फूट सकेंगे......तभी मुझ वृद्ध के भी सन्तान हो पायेगी। इसी दौरान वृक्ष पर अंकुर फूट निकले। इसी चमत्कार को देख कर राजा सन्तोष के साथ घर लौटे। साथ ही राजा वट वृक्ष की जड़ खोद कर लाये थे। यही जड़ राजा ने अपनी रियासत न्होल में लगाई जो आज विशाल वृक्ष बन गया है।

महासू के प्रताप से राजा के चार पुत्र उत्पन्न हुए। समय गुजरता गया। राजा राज-कार्य में उलझ कर अपनी प्रतीज्ञा भूल गया। राजा की मौत के बाद उसका बड़ा पुत्र तख्त पर बैठा। संयोग से बाहरी राजाओं के साथ युद्ध छिड़ गया। पराज्य के लक्षण जब पैदा होने लगे, सभी लोग चिन्ता करने लगे। तभी राज्य में किसी बुजुर्ग ने पिता (राजा) की भूली प्रतीज्ञा का स्मरण करवाया। राजा ने पिता की भूल स्वीकार की और मन में विचार किया कि यदि युद्ध में उसे विजय मिलेगी तभी वह मन्दिर बनाने में समर्थ होगा। राजा ने चांदी की खोखरी मढ़ कर उसे 'बन्द' के रूप में रखा। राजा की विजय हुई। राजा ने पूर्ववत् प्रतीज्ञा के अनुसार नोल्ल में महासू देवता का मन्दिर बनवाया और साथ ही छोटे वीर, लंकडा, रंगीवीर आदि को भी स्थापित किया। इस प्रकार यह स्थल महासू बोठे (देवता) का मुख्य तथा स्थाई माना गया है। यह स्थान उत्तर-प्रदेश में उत्तर प्रदेश तथा जिला शिमला की सीमा पर (त्योणी से लगभग २५ मील, नोंटवाड़—डोडरा क्वार मार्ग पर, तौंस के लगभग साथ) स्थित है।

(क) मानता बढ़ी :

यह तो सर्वमान्य है कि प्राचीन काल में देश तथा राज्य प्रशासनिक इकाई के रूप में रियासतों में विभक्त थे। प्राचीनकाल में लड़ाई-झगड़े, वैर-भाव लोगों में चले रहते थे। लोग युद्ध में विजय की कामना के लिए देवी देवता की सहायता लेने लगे और देवताओं पर विश्वास रखने लगे। (देव ! यदि हमारी अमूक कामना पूरी होगी अथवा हमारी विजय होगी तब हम अमूक चीज

भेंट करेंगे, बलि चढ़ाएंगे या तुम्हारा थान (जगह) ,अपने स्थान पर बनाएंगे अथवा तुम्हारी मानता करेंगे इत्यादि ।)

महासू देव में सत् के कारण उनकी भावना सफल हो जाती और वह मुंह बोली शर्त पूर्ण करते । देव के बढ़ते चमत्कार को देख कर लोग दूर-दूर तक प्रभावित हुए और तभी रियासतों, परगणों से गांव-गांव तक महासू देवता के मन्दिरों की स्थापना हुई । यहां तक कि उसी समय दिल्ली तक इस देवता का प्रचार हुआ। यमुना नदी पर महासू का पत्था लेकर देवता के कारदार जा रहे थे पत्था छूट कर यमुना में गिर पड़ा :

.... तों उसों दा पारे टप्पू था
सोला खा नोए
तू वमा न जाए विरसूआ, वर्मा न जाए । (विरसू)

पत्थे पर सुन्दर नगद रुपये गढ़े-मढ़े गए थे । पत्था दिल्ली के निकट पहुंचा जहां वह दिल्ली के राजा व कारदारों (जो सैर करने निकले थे) की नजर पड़ा । कारदारों ने पत्था महल में ले जाकर उसका उपयोग ब्राह्मणों को अन्न देने (माप) में किया । कुछ ही दिनों में राजा बिमार हो गया । पण्डित, ब्राह्मणों, सभी ने महासू देवता का दोष खोज निकाला तब महासू देवता एक पण्डित को प्रकट हुआ और पत्था सीटी देने लगा । जिस का पता हमें महासू देव के प्रसिद्ध गीत ,विरसू' की इन पंक्तियों से चलता है :

दिल्ली लाए म्हासुए पर्चे करे
तू वर्मा न जाए विरसुआ – वरमा न जाए ।
राजै री लाए मान्दणें दै
सुगटू भरै...
तू वरमा न जाए विसूआ
वरमा न जाए ।

पत्था वापिस नोल्ल को लौटा दिया तथा स्वयं देवता की मानता करनी पड़ी ।

(ख) महासू की बस्ती–नोंल्ल (न्होल) :

यहां महासू का आवास स्थल माना जाता है । यहां देवता के अद्भुत मन्दिर के पीछे बट का वृक्ष है जहां पूजन के समय घी का दीया जलाया जाता है । मन्दिर में विशेष द्वार के भीतर (प्रौल या न्हेरी खोली) महासु की अष्टधातू की मूर्तियां हैं । साथ ही अष्टधातु पर जीव-जन्तुओं पशु-पक्षियों की सुन्दर चित्रकारी की गई है, जिसे धूप आदि दिया जाता है । काली प्रौल के भीतर पुजारी के अरिरिक्त देवता के गिने-चुने कारदार ही जा सकते हैं । यहां भादों की चौथ, शुक्ल पक्ष को विशेष त्यौहार माना जाता है क्योंकि यही दिन देवता महासू का जन्मदिन कहा गया है ।

देवता के मन्दिर के साथ छोटे-मोटे कुछ और वीर-भांखर (उप-देवता) भी है । साथ ही हरिजन लोगों की बड़ी बस्ती है जिन्हें स्थानीय लोगों में 'दैल' कहा गया है । इन लोगों की आजीविका

उपार्जन का साधक देवता की सम्पत्ति है अर्थात कुछ लोग महासू के खेतों (डोखरों) में काम करते हैं, कुछ भेड़-बकरियां चुगाते हैं और कुछ पूजा आदि बजाते हैं। इन सभी को भोजन महासू के भण्डार से मिलता है। भोजन की मिकदार आधी-आधी होती है। अर्थात् आधा भोजन सोजा, आधुनिक (गेहूं, चावल) तथा आधा बगड़ा जैसे बथोली, कदोली आदि। इनके अतिरिक्त सभी दर्शनार्थियों को भी भण्डार से भोजन मिलता है। लोग अपनी मुराद पूर्ण होने पर देवता को भेंट चढ़ाने या दर्शन करने वहां जाते हैं। यहां तक कि लोक-गीतों के श्री गणेश में भी हमें इसी आराध्य देव का नाम मिलता है।

चाँद गाउ सूर्जो बासकी गांगै
जिन गाई धतरै
दिवा चरागै।
× × विए माते गाऊ
जिये धतरे चाणे......
× × × ×
बोठा राजी म्हासू
वांगौ री पाणें
सूत्तौ री जेओ डिड़कू
× × साधौ दों आणे।

(देव ! मैं तुम्हारा गुणगान करता हूं चांद, सूर्य सहित मैं वियामाता का गुणगान करता हूं जिसने संसार रचा है। फिर बोठा महासू तुम्हारी स्तुति करता हूं जो अमृत जल के समान है। हे देवता ! मेरा बिगड़ा कारज सूत के धागे की तरह ठीक नीयत रूप में हो, यही मेरी कामना है।)

विभिन्न स्थानों पर त्यौहार :

ग्रामों–परगणों, जहां भी देवता के मन्दिर हैं। त्यौहारों का आयोजन किया जाता है। बड़े त्यौहार में विशेषतयः भडैंच और जागरा प्रमुख है : चैत्र तथा वैसाख की साजी में भड़ैच मनाई जाती है। जो स्वांग या करयाला का दूसरा रूप भी कहा जा सकता है। लोग बूढ़े-साधु बन कर (मुखौटे पहन कर) नाचते–गाते तथा हास्यप्रद-वाद संवाद करते हैं फिर ठोठे का खेल खेला जाता है। जो इस आयोजन का सफल तथा प्रमुख आकर्षण होता है। इसके बाद लोक-नृत्य आदि होता है। दूसरा त्यौहार भादों की चौथ शुक्ल पक्ष में मनाया जाता है। यह विशेष त्यौहार होता है। इसे जागरा अर्थात् जागरण कह कर सम्बोन्धित किया जाता है।

यह दो दिन चलता है। पहले दिन पुजारी महासू की निशानी बाहर तम्बू में निकालता है। दूसरे रोज दोपहर के समय पुजारी इसे स्नान करने ले जाता है। इस समय अक्सर देवता प्रकट होता है। यह दृश्य देखने योग्य होता है। फिर गांव के सभी लोग आटा, तेल, गुड़ आदि एकत्र कर वहीं भोजन बनाते हैं। ठाणी (महासू के व्रर्ती) पूर्णतया भोजन यहीं खाते हैं तथा बाकि ग्रामवासियों को हलवा मिष्ठान के रूप में बांटा जाता है।

सन्ध्या के समय लोग प्रकट हुए महासु देवता के सम्मुख अपनी समस्याएं रखते हैं। फिर पूजन होता है। पूजन के समय गांव के सभी लोग पुजारी के साथ मशाल ले कर इकट्ठे हो जाते हैं। पूजन का आरम्भ बकरी की बलि से किया जाता है और लोग पूर्णतः परम्परागत गीत 'विरसू' गाते हैं।

यह गीत महासु की पूरी कथा को लेकर गीतबद्ध किया गया है। इसके बाद दूसरे गीत घूघती आदि गाये जाते हैं फिर प्रातः तक बच्चे, औरतें, बूढे सभी अपनी-अपनी मालाओं में नाचते हैं। वर्ष भर का यह त्यौहार जब समापन होता है फिर प्रत्येक घर से लोग एक-एक पत्था प्राच या कूथ के रूप में एकत्र कर महासु के देवस्थान न्होल ले जाते हैं जहां वह देवता के भण्डार मे जमा होता है।

द्वारा
श्री जगदीश शर्मा
ब्राह्मण कालौनी
डाकखाना डीम, तहसील जुब्बल
शिमला (हि०प्र०)

महासुई उपभाषा के क्रिया-पदों का संरचनात्मक अध्ययन

—हरिराम जसटा

वर्तमान जिला शिमला, जिला सोलन (नालागढ़ को छोड़ कर) महासुवी उपभाषा का क्षेत्र है। गिर्यसन ग्राहम बेली, अनेक अन्य भाषा शास्त्रियों ने १५ अप्रैल, १९४८ से पहले की रियासतों के आधार पर इस क्षेत्र की बोलचाल की भाषा को २६ से भी अधिक नाम दिए। जैसे कोची, क्योंथलो, बघाटी, जुबली, बराड़ी, बिशो किरनी, सधोची, बुशैहरी, डोडरा कवारी,, कोटगरू, ठियोगी, रामपुरी, बलसनी इत्यादि। पर इस बात को ग्राहम बेली ने भी स्वीकार किया है कि प्रत्येक शब्द का उच्चारण, उसी बोली को बोलने वाले उसी स्थान पर थोड़ी बहुत विभिन्नता से करते हैं। और फिर इन में से अनेक भाषा-विदों का उद्देश्य तब तक प्रत्येक शब्द को अपने वर्गीकरण में घसीट कर उसी नाम को प्रचलित करने का रहा है। जो दशा पहाड़ी की अनेक जनगणनाओं में १९५१ तक होती रही, वही दशा महासुवी की आज तक होती रही है। आज भी कुछ लोग इस नामकरण पर नाक भौं चढ़ा कर इसे निरर्थक बनाने का प्रयत्न करते रहे हैं। पर उन सभी महानुभावों से मेरा विनम्र निवेदन है कि आज के सन्दर्भ में अब वह बघाटी, क्योंथली, सधोची, इत्यादि नाम देकर पहाड़ी के आलोचकों को भले ही बंगले बनाने का मौका देने लगे, परन्तु महासुई की अपार शब्द सम्पति उनका समर्थन नहीं करती। यदि महासुवी के शब्द भण्डार की तत्सम्-तद्भव, नये शब्दों का निर्माण, अर्थ विकार सूचक, अनेकार्थी शब्द, पर्यायवाची शब्द, अनेक शब्दों के लिए एक शब्द, विशेष अर्थ सूचक, अनवाचक, समोचरित-विपरितार्थी, अर्थान्तिर बोधक, मुहावरे इत्यादि सभी का गहनना और विस्तार से अध्ययन किया जाए, तो मेरे कथन के भाव की पुष्टि महासुवी के शब्द-शब्द द्वारा होगी कि महासुवी का स्वरूप मूलत: एक ही है। उसकी इस एक-रूपता के लिए महासुवी से श्रेष्ठ और कोई नामकरण नहीं जंचता। महासुवी का वर्तमान रूप १५ अप्रैल, १९४८ के दिन २६ छोटी बड़ी रियासतों के विलय उपरान्त उभरा है और फिर कई दृष्टियों से यह सिरमौरी और कुलवी के बिल्कुल निकट है। प्रत्येक भाषा अर्जित सम्पति भी है और परिवर्तनशील भी, फिर भी मूलतः प्रत्येक भाषा की अपनी निश्चित प्रकृति रहती है। किसी भी भाषा का अध्ययन उस के भाषा बिज्ञान—गत स्वरूप एवं व्याकरण के आधार पर किया जाता है, किन्तु ऐसी किसी भी भाषा को प्रकृति का परिचय इन से अतिरिक्त मिलता है। भाषा की प्रकृति का परिचय उसकी ध्वनियों, उसकी शब्द रचना, उसकी वाक्य रचना, उसके मुहावरों उसकी क्रियाओं, उसके कारकों का सम्बन्ध-सूचक शब्दों आदि के माध्यम से प्राप्त होता है। किसी भी भाषा की सामान्य जानकारी के लिए उसकी प्रकृति से परिचित होना आवश्यक होता है।: संज्ञाएं, क्रियाएं, विशेषण और क्रिया विशेषण भाषा रुपी शरीर के अंग होने के कारण साधारणतय

सभी भाषाओं के होते हैं। फिर भी उनके सूचक शब्दों के रूप या बनावट और उनमें होने वाले विकार या परिवर्तन अलग-अलग प्रकार के होते हैं। वही रूप और प्रकार भाषा की प्रकृति के अग होते हैं।

किसी भी भाषा की प्रकृति उसके वाक्य के पदों के क्रम में देखी जा सकती है। जैसे हिन्दी में कहेंगे, मैं सब्जी खाता हूं। पहाड़ी की एक प्रमुख धारा महासुवी में कहेंगे 'आं भुलका खाऊ' महासुवी में भी हिन्दी की तरह शुरु में कर्ता और अन्त मे कर्म का प्रयोग होता है। यहां यह ध्यान में रखना होगा कि महासुवी में क्रम का सामान्य रूप वही है। किन्तु प्रभाव पैदा करने के लिए अथवा जोर देने के लिए कुछ क्रम मे उलट फेर सभव है। जिस पद पर अधिक जोर देना संभव होता है उसे प्रारम्भ मे रखा जाता है। 'मोलुवे बशी दी भांडियो खेऊवो।' यह वाक्य का सामान्य स्वरूप है। किन्तु यदि महत्व किसने गाली दी है इसका नहीं, इसका है कि किसको गाली दी, तो कहेंगे 'बंशी दी मोलुवे भांडियो खेंऊवो', या यदि जोर किए गए अपराध पर है किसने किसके प्रति किया है, इस पर नहीं, तो कहेंगे–'भांडियो खेंऊवो मोलुवे बशी दो'।

वैसे तो संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के व्याकरण आचार्यों ने इन भाषाओं के क्रिया-पदों पर सविस्तार और गहनता से विचार किया है, परन्तु पहाड़ी भाषा के बहुत कम विद्वानों ने इस ओर ध्यान दिया है।

संस्कृत और हिन्दी के अधिक निकट होने के कारण पहाड़ी (महासुवी) की धातुओं को भी दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है। वह हैं सिद्ध धातुए और साधित धातुए।

सिद्ध धातुएं :

वे धातुएं जो मूल रूप में सुरक्षित हैं, यथा कर् (ना), कांप (ना), घिस (ना), तार (ना), जप (ना), घूम (ना), पच् (ना), चूश (ना), भण्ड (भाड, भांडणा), मन्त्र (मोंत्रणा)।

इनमे प्रायः सस्कृत स आई हुई तद्भव धातुएं जैसे (क) साधारण धातुए, और (ख) उपसर्गयुक्त धातुए गिनी जा सकती हैं। इसी प्रकार सस्कृत णिजत से आई हुई सिद्ध धातुए संस्कृत से पुनः तत्सम एवं अर्धतत्सम सिद्ध धातुएं, और संदिग्ध व्युत्पति वाली देशी–धातुओं के नाम लिए जा सकते हैं।

सिद्ध धातुओं के अन्तर्गत आने वाली कुछ महासुवी साधारण धातुएं इस प्रकार हैं। इनके आगे प्रायः णा या णों लगाने से क्रिया बन जाती है। इनमें संस्कृत गणों के विकरण भी विद्यमान हैं :

अकड़	घूम	जोत	ठोक
ओक	घोल	झट या झोट	डांट
उगल	चूट	झटक	तर
खेल	चूस	झपट	तार
खोल	चुन	टपक	ताक
गल	छल	टल	तान
ग्रह	छाप	टोक	तोल

tharahkardu.in

थक	धुन	बन्ध	लीप
थाप	धूप	माण्ड	लड़
थाम	नबाह	भाग	वाश
थूक	नाप	मांग	विसर
दण्ड-डण्ड	नाप	मुण्ड	शिच
दल	पा	मन्त्र या मौत्र	शुक
देख	पिश	रोप	समेट
धर	पूज	रुष	
धार	फैल	लंघ	
धाव	फांद	लड़	

जैसा कि व्याकरण के विद्वान जानते ही हैं, भाषा की मूलभूत दो इकाईयां हैं—ध्वनिग्राम तथा पदग्राम। प्रथम का सम्बन्ध विशेष रूप से अभिव्यक्ति से है और दूसरी का वस्तु से। प्रत्येक वाक्य में दो प्रकार के विशिष्ट तत्व होते हैं–एक तो भावों के अनुरूप विषय की अभिव्यक्तिमूलक तत्व और दूसरे भावों के परस्पर सम्बन्ध के द्योतक तत्व। व्याकरण में मुख्य रूप से पद और पदार्थ का सम्बन्ध निरूपित किया जाता है। धातु, प्रत्यय, रचना आदि और पद पदादि तथा वाक्य में उनका क्रम, सम्बन्ध आदि व्याकरण का विषय है। सामान्य तया पद-ग्राम ध्वनिग्रामों का लघु अनुक्रम है। पदग्राम लघुतम सार्थक इकाई है।

प्रत्येक में भाषा सघटना में परिवर्तन होते रहते हैं।

इसी प्रकार पहाड़ी (महासुवी) में संस्कृत से उपसर्ग संयुक्त धातुएं भी आ गई हैं। इनके आगे प्रायः ना या नो से इसकी क्रिया बन जाती है।

उत् + जट = उजड़ना
उत + गम = उगना
उदगति = उगलना
उच्छलती = उछलना
उज्जायति = उजाड़ना
उत्थापयति = उठना
उड्डापयति = उड़ाना
उतारयति = उतारना
उद्भारयति = उमड़ना
ऊल्लाटयति = उलटना
निरीक्षा = निरखना, देखना
निवाह = निवाहना
पहिर = पहिर, पहिरना, पहनना
पा = पाना
प्र = जन, यन = पोजणा (पैदा होना)

भीग=भीगना
संभव=संभलना
सौंप=सौंपना

इसी प्रकार महासुई में विभिन्न विकरणों के चिन्ह मिल जाते हैं। जैसे (१) –य-विक युक्त :—

नृत–य–ति=नृत्य–नाचना।
युध–य–ति=युद्ध–जोष, झूझना।
बुध–य–ते=बूझना।

(२) –नो– विकरण युक्त : चुन (ना) (सं० चि, चि–नो–ति चिणई, चुगई, सुन (सुना) (सं० श्रृ, श्रृणोति, सुणना), घुन (ना) (सं० घु–नोति)।
(३) –ना– विकरणयुक्त : जान (ना) (सं० ज्ञा, जा–ना–ति)।
(४) –न– का मध्यागम : बांध (ना) (सं० बंघ, बुध), रूंध (ना) सं० रूंघ, रुघ)।

इस प्रकार संस्कृत से पहाड़ी में सिद्ध धातुओं के रूप में कुछ णिजंत धातुएं मिली हैं। यह भी अन्य सकर्मक क्रियाओं की भान्ति प्रयुक्त होती हैं। संस्कृत के शुद्ध रूप पहाड़ी अकर्मक क्रिया के रूप में है।

प्रेरणार्थक रूप निष्पन्न करने के लिए पुनः 'आ' या 'वाँ' जोड़ना पड़ता है। पहाड़ी के ऐसी धातुओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

संस्कृत	पहाड़ी	संस्कृत	पहाड़ी
खाटयति	उखाड़ (ना)	उज्जाटयति	उजाड़ (ना)
छादयति	छा (ना)	उडडापयति	उड़ा (ना)
छेदयति	छेद (ना)	उल्लाटयति	उलट (ना)
ज्वालयति	जल (ना)	चालयति	चाल (ना)
तापयति	तपा (ना)		
स्नानपयति	नहा (ना)		

महासुई में संस्कृत के पुनः व्यवहृत तत्सम तथा अर्ध तत्सम धातुएं भी उपलब्ध हैं। संस्कृत के अनेक तत्सम धातुओं के रूप पहाड़ी में आये। इनके साथ तत्सम, अर्ध तत्सम शब्द भी आये। उदाहरण के लिए कुछ क्रियापद नीचे दिये जाते हैं, यथा गरज (गर्ज)–गर्जन करना, गरजना, गुड़ना; तज् (त्यज्)–छोड़ना, छाड़ना; सोभ (शोभ)–सुन्दर बनाना, शोभला बनना; सेव् (सेव्)–सेवा करना इत्यादि।

महासुई में ऐसी अनेक धातुएं हैं जिनकी उत्पत्ति संस्कृत से नहीं दिखती है। जैसे :—

टोह (णा)	ढ़ांप (णा)	थोस (णा)	खेर्दा (णा)
टोक (णा)	लोट (णा)	उघड़ (णा)	खूब (णा)
ठोक (णा)	ताछ (णा)	उचड़ (णा)	घूघ (णा)

छेक (णा)	धाच (णा)	भाश (णा)	शोट (णा)
छोश (णा)	नींद (णा)	रिड (णा)	इत्यादि ।
झोठी (णा)	पेच (णा)	ल्हुश (णा)	

प्राय: पद रचना में न केवल मूल शब्द का प्रयोग करना चाहिए और न ही प्रत्यय का। पद रचना में दोनों का संयोग होता है।

२. साधित धातुएं :

णिजंत (प्रेरणार्थक) :

संस्कृत की णिजंत धातुओं से प्राकृत काल में प्रेरणा का अर्थ लुप्त सा होने लगा था, और पहाड़ी तक आते आते ये प्रेरणा का अर्थ छोड़ कर सकर्मक धातुएं बन गईं, जैसे : सं॰ मृ—मरना धातु के प्रेरणार्थक रूप मारयति से व्युत्पन्न पहाड़ी रूप मार (ना) में प्रेरणा का अर्थ नहीं रह गया है, अपितु यह सकर्मक धातु है। पहाड़ी में निम्नलिखित रूप मिलते हैं :

मूल धातुओं में वा के मेलसे जैसे : करवा (ना); रूक (ना); गढ़वा (ना); गढ़ (ना); चढ़वा (ना) इत्यादि।

णिजंत रूप बनाने में एकाक्षरीय दीर्घ स्वर-युक्त धातुओं की दीर्घ स्वर ह्रस्व में बदल जाता है। जैसे :

घूम	घूमना	घूमवाना	छील	छीलना	छिलवाना
कस	कसना	कसवाना	नाप	नापना	नपवाना
खोद	खोदना	खुदवाना	पका	पकाना	पकवाना
कात	कातना	कतवाना	बसा	बसाना	बसवाना
खोल	खोलना	खुलवाना	रो	रोना	रवाना
घटा	घटाना	घटवाना	लड़	लड़ना	लड़वाना
छाप	छापना	छपवाना			

प्राय: सभी सिद्ध तथा नाम धातुओं के प्रेरणार्थक रूप बन जाते हैं। नाम धातुएं :—

संस्कृत	हिन्दी	संस्कृत	हिन्दी
उद्गति	उग् (ना)	स्तम्भ	थाम (ना)
गर्त	उंघ (ना)		ठंडा (ना)
ग्रंथि	गाड़ (ना)	पिष्	पीट (ना) या पीश (ना)
चोर	चुरा (ना)	पाश	फोश (ना)
छिन्न	चीची (चचियाना)	मूत्र	मूत्र (ना)
	छीन (ना)	मोह	मोह (ना)
	जोत (ना)	लोभ	लोभा (ना)
तर्कयति	ताक (ना)	शुष्क	शुक (ना)

मिश्रित अथवा संयुक्त धातुएं या तो धातुओं के योग से अथवा किसी धातु से पूर्व कोई संज्ञा, क्रियाजात विशेषण अथवा कृदन्त पद जोड़कर बनती है। बांढि दोमो, वालि सकमो जान लेनणि, जाने देणो वगैरा।

सिद्ध अथवा नाम धातु में, किसी प्रत्यय के योग से प्रायः–युक्त धातुएं निष्पन्न हुई हैं। मूल अथवा नाम धातु से इनके अर्थ में कुछ अन्तर भी आ जाता है। पहाड़ी की कुछ धातुएं इस प्रकार है :

१. क् (सं० कृ)—प्रत्यय युक्त :

अटक (ना), चूक (ना), छिटक (ना), झपट (ना), टपक (ना), थूक (ना), रोक (ना), टोक (ना) बहक (ना)।

२. ट (सं० वृ)—प्रत्यय युक्त :

चिपट (ना), झपट (ना), डपट (ना)।

३. र युक्त :

ठहर (ना), पुकार (ना), लसर (ना), घिसर (ना)।

४. ल युक्त :—

फुसला (ना), टहल (ना), बहल (ना), जुबजैल (ना), कैल (ना), पटैल (ना)

ध्वन्यात्मक अथवा अनुकार ध्वनिज धातुएं भी नाम धातुओं के अन्तर्गत आती हैं। इन्हें यदि दो भागों में बांट दें तो ठीक होगा। मुख्य अनुकरणात्मक तथा द्वित्य अनुकरणात्मक। मुख्य अनुकरणात्मक धातुएं भी दो प्रकार की हैं–साधारण और द्वित्व। कुछ धातुएं इस प्रकार हैं : तड़कना, दड़फड़ाना, खटखटाना, फरफराना, बड़बड़ाना, घड़घड़ाना, पहाड़ी (महासुई) की कतिपय अनुकरणात्मक धातुएं इस प्रकार हैं :

टप [ना], फूंक [ना], छींक [ना], कटकटा [ना], खटखटा [ना], खनखना [ना], झनझना [ना]

पहाड़ी (महासुई) में अनेक धातुएं संदिग्ध व्युत्पति वाली हैं। जैसे :

फांक [ना], फाड़ [ना], झोंक [ना], छौंक [ना], टांक [ना], टांग [ना]।

इस में कुछ भी संदेह नहीं कि धातुएं व्याकरण की सृष्टि है, फिर भी बोलचाल की भाषा में अशिक्षित लोगों में भी धातुभाव तो होता ही है। भले ही मोलियर के एक नाटक के एक पात्र की भांति वह नहीं जानते, कि वह गद्य में बात कर रहे हैं और किसी धातु का प्रयोग कर रहे हैं। पर बोलते समय उनको इसका आभास अवश्य रहता है कि जो वाक्य वे बोल रहे हैं, उनमें कोई क्रियापद है और वह अमुक धातुओं से निष्फल हुए हैं।

वास्तव में शब्दों की मूलरूप धातुएं भी होती हैं। पहाड़ी में धातु 'संज्ञा' पदों के अनेक रूप वर्तमान हैं। ये पद या तो अकेले या समानार्थक धातुपदों के साथ जोड़कर प्रयोग में लाए जाते हैं। और प्रायः कर्ता या कर्म कारक में होते हैं। इनके कुछ उदाहरण ये हैं :

कांट–छांट, हार जीत, डांट डपट, भूष बात, तोड़ फोड, राड़ पुकार इत्यादि।

पहाड़ी में क्रिया विशेषण पद का प्रयोग संयुक्त क्रियाओं की रचना में होता है।

अकर्मक तथा सकर्मक धातुयें

क्रिया का सामान्य रूप सकर्मक और अकर्मक दोनों रूपों में प्रकट होता है । अकर्मक क्रियाएं सकर्मक तभी बनती हैं जब उनके साथ प्रयुक्त संज्ञा शब्द प्रधान कर्म का कार्य करते हैं जैसे : देना करना, पढ़ना, पीना, भेजना, लिखना आदि सकर्मक क्रियाएं हैं । सकर्मक क्रिया में कर्म प्रधान होता है । क्रिया का फल कर्म पर पड़ता है । परन्तु प्रधानता जहां नहीं होती, केवल सामान्य अवस्था या व्यापार का द्योतक जहां होता है, वह अकर्मक क्रियाएं कही जाती हैं । डा० दीम शिल्प ने सकर्मक और अकर्मक क्रियाओं का भेद स्पष्ट करते हुए लिखा है—अकर्मक क्रियाएं सकर्मक क्रियाओं का अर्थ प्राय: तब ग्रहण कर लेती है जब उनके साथ संज्ञा शब्द प्रयुक्त होते हैं जो प्रधान कर्म का कार्य करते हैं । जैसे बोलना अकर्मक क्रिया है । किन्तु धावा बोलने में (ब-ोलना) में अकर्मक क्रिया है । अनेक बार अकर्मक क्रियाओं के प्रधान कर्म ऐसे भाववाचक संज्ञा शब्द होते हैं जो क्रियाओं जैसे व्यापार व्यक्त करते हैं । जैसे 'खेलना' अकर्मक क्रिया है किन्तु खेल खेलना में 'खेलना' अकर्मक क्रिया है । लड़ना अकर्मक क्रिया है, किन्तु लड़ाई लड़ना में 'लड़ना' सकर्मक क्रिया है । इस प्रकार सकर्मक–अकर्मक भेद क्रिया के अर्थ पर आधारित है । क्रिया का अर्थ बदलने पर सकर्मक अकर्मक हो जाती है और अकर्मक सकर्मक के रूप में प्रयुक्त होने लगती है । वास्तव में यह भेद क्रिया के सामान्य रूप में विशेषण विषयक विशिष्टता होने के कारण है । इसलिए 'बोलना' और बोलना में अन्तर पैदा हो जाता है ।

पहाड़ी में प्राय: सिद्ध धातुएं अकर्मक ही मिलती हैं । पर अनेकसाधित धातुएं भी अकर्मक होती हैं जैसे :

चल (ना)	आना	तैरना
बैठ (ना)	जाना	गाना
खेल (ना)	उड़ना	पढ़ना
कूद (ना)	होना	बोलना
हंस (ना)	रहना	

सिद्ध अकर्मक धातुओं को सकर्मक में बदलने के या तो णिच् (प्रेरणार्थक) प्रत्यय आय-आव-आ जोड़ दिया जाता है, या मूल–अकर्मक धातु के ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है । जैसे :

कट (ना) सकर्मक, काट (ना) अकर्मक, (मरना) मार (ना) ।

पहाड़ी की कुछ सम्भाषित सकर्मक क्रियाएं ये हैं :—

खाना, देखना, सूंघना या शींघना, भेजना, करना, सुनना या शुनना, मारना ।

एह्रो बोलनो का ठिक होलो ?

अलेक्शनों दी कोसरी जीत होली ?

सै का तिने गिनि गोआ औ ?

पहाड़ी (महासुई) के उक्त रूपों से भाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है क्योंकि भाषा के गठन की जानकारी के लिए इन रूपों का अध्ययन जरूरी है ।

पहाड़ी (महासुई) के क्रियापदों की रूप-रचना में धातु या मूल शब्दों से प्रत्यय जुड़कर एक ही ढांचे के रूप में क्रियापदों की निश्चित रचना देखी जा सकती है जैसे :

खांदा पिदा, लड़दा, हासदा, रांदा, दौड़दा, गिरदा, चड़दा, चालदा, बैठदा, मारदा, पीटदा, घसीटता इत्यादि।

द्वैत क्रिया पद :

कार्य की निरन्तरता का भाव प्रकट करने के लिए महासुई में प्रायः क्रियाओं के पूर्वकालिक रूपों का द्वित्व किया जाता है, जैसे : हांडदे हांडदे, बोठदे बोठदे, गांदे गांदे, दैंदे दैंदे, खांदे खांदे, शुणदे शुणदे, दौड़दे दौड़दे, रोन्दे रोन्दे, हासदे हासदे इत्यादि। पूर्वकालिक क्रिया के द्वित्व में ओ परसर्ग बाद में जोड़ा जाता है। जैसे : गाये गायो, नाचि नाचियो, सोचि सोचियो, हानि हानियो, भांडि भांडियो इत्यादि।

महासुई में कई प्रकार धातुपद युग्म रूप से प्रयुक्त होते हैं। ये दोनों या तो सामानार्थक होते हैं या निरन्तराबोधक। जैसे : लिखि पढ़ियो, खाई पिओ, बोलि बतावियो, नाचि खेलियो, कुटी पिशियो इत्यादि।

क्रियापदों के अन्तर्गत शब्द किसी न किसी व्यापार या अवस्था को प्रकट करते हैं, और यही कारण है कि व्यापार या अवस्था को द्योतित करने के लिए क्रिया या काल का घनिष्ट सम्बन्ध देखा जाता है। इसीलिए क्रिया का वृति (काल), वचन और पुरुष आदि से अटूट सम्बन्ध है।

यहां यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं, कि महासुई दैनिक बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली हिमाचल प्रदेश की एक प्रमुख उपभाषा है। इस लिए क्षेत्रीय बिभिन्नता, परिवर्तनशीलता, लचीलापन एवं एक शब्द के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त होने भी स्वाभाविक है। इस लिए मैंने यहां इस भाषा की सैद्धान्तिक व्याकरण न बना कर उसके व्यवहारिक रूप का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

यहां मैंने संक्षिप्त में महासुई के क्रियापदों का संरचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयत्न किया है। मैं कहां तक इसमें सफल हो सका हूं। यह मैं पहाड़ी भाषा शास्त्रियों पर छोड़ता हूं।

कुमार बिल्डिग,
संजोली, शिमला–६।

कुल्लू का उत्सव–दरपौण काहिका

—सुदर्शन विशिष्ठ

कुल्लू में ढालपुर मैदान के ऊपर है दरपौण का शिखर। यहां ऊपर कुछ खुली व ऊंची जगह पर है देवता की "सौह"। सौह अर्थात् देवता का प्रांगण जहां देवता के कृत्य होते हैं, नृत्य होते हैं। इधर से सामने पार की ओर दिखता है बिजली महादेव का शिखर, नीचे व्यासा की उपत्काएं दूसरी ओर तारागढ़, भु-भू जोत, लग घाटी। इन्हीं पहाड़ियों के पार है मण्डी। इस क्षेत्र में होने वाले धार्मिक पर्वों व मेलों में मण्डी के लोगों का आना जाना रहता है। देवता का मन्दिर गांव के दूसरी ओर देवदारूओं के घने जंगल में है जहां धूप भी नहीं पहुंच पाती परन्तु सभी कृत्य इस सौह में होते हैं। यद्यपि मलाणा में देवता जमलू का कोई रथ नहीं है तथापि यहां रथ बना लिया है। यहां भी मलाणा की भांति फागली मनाई जाती है।

भादों की संक्रांति को आयोजित इस काहिके में दो अन्य देवता भी आए हुए थे। एक देवता जमलू के साथ ही विराजमान था और दूसरा अगले कमरे में। हम साढ़े पांच के करीब ही चल दिए थे घर से ताकि समय पर पहुंच कर सारे कृत्यों को देख सकें।

करीब दस बजे देवताओं के रथ बाहर निकाले गए। सात गूर देवता के पास एक पंक्ति में खड़े हो गए। लम्बी जटाओं वाले, चोला पहने गम्भीर गूर पहली बार देखे थे। सफेद बालों, सफेद भौंहों वाला लम्बा, वरिष्ठ गूर ऋषि तुल्य लग रहा था। इससे पहले साधारण से लगने वाले गूर इस भेष-भूषा में आदि पुरुष लग रहे थे।

कल सायं ही दूसरे देवता आ पहुंचे थे। तड़के चार-पांच बजे काहिके की स्थापना हो चुकी थी चारों ओर चार टहनियां गाड़ कर ऊपर कपड़ा फैला रखा था। नीचे बीच में एक ढोलकी का खोल सा रखा हुआ था। चारों कोनों पर सफेद पगड़ी पहने चार पहरेदार तैनात थे जो किसी को भी वहां फटकने नहीं दे रहे थे।

जब हम सुबह चाय पी रहे थे तो एक ग्रामीण ने एक आदमी को चाय पीने का अनुरोध किया था। उसकी आकृति व चेहरा तिब्बतियों सा लग रहा था। पीछे टोपी के नीचे लम्बे बालों की चोटी बांधी हुई थी–सम्भवतः यहां भी गांव में तिब्बत के लोगों की तरह लम्बे बालों की चोटी बांध कर रखते होंगे, मैंने सोचा था। परन्तु वह तो नौड़ था, यह बाद में ज्ञात हुआ।

नौड़, जिसने आज मरना था भुट्टी का रहने वाला था। काफी तेज चुस्त और हंसमुख व्यक्ति था। बड़ी देर से उससे दो बातें करने की कोशिश में था। आखिर मेले की ओर जाते हुए वह सामने पड़ गया।

"आप कितनी बार मर चुके हैं ?" मैंने उससे पूछा। "कई बार" उसने लापरवाही से कहा।

"कैसा लगता है ? क्या कुछ महसूस होता है ?"

"नहीं, कुछ पता नहीं चलता । लगता है बहुत ही ज्यादा शराब पी ली हो । बहुत ही गहरे नशे में हों । दोबारा जिन्दा होने पर बहुत थकान महसूस होती है ।"

"किसी प्रकार का भय नहीं लगता ?" "डर तो रहता ही है । फिर भी जान तो प्यारी होती है । परन्तु तसल्ली यह रहती है कि यदि मरेंगे तो इतने लोगों की खातिर मरेंगे । ये तो हमारा ही उत्सव है । सभी की आंखें हम पर रहती हैं । यदि मर भी गए तो क्या । फिर भी जवान आदमी हूं । देखो, मेरा दिल कितनी जोरों से धड़क रहा है इस वक्त ।" उसने मेरा हाथ अपनी छाती पर रखते हुए कहा ।

नौड़ ही तो काहिका का आधार है । यही इस यज्ञ का पुरोहित है । यही मरता है यही जीता है । काहिका का अधिकार इसी जाति को मिला है और किसी को नहीं । यज्ञ करने की इनकी अपनी विधि है, अपने मन्त्र हैं ।

अब देवता नाचते हुए काहिके में आ गए थे । सब गूर एक पंक्ति में खड़े थे । नौड़ व नौड़ स्त्रियां नीचे बैठी हुई थीं । वरिष्ठ गूर सबसे आगे था । उसके आगे एक आदमी के सिर पर छत्रों वाला मुकुट था । यही पहले वास्तविक देवता था । रथ तो बाद में बने ।

अब प्रमुख कृत्य छिद्रा होने वाला था । छिद्रा अर्थात् प्रायश्चित । काहिका प्रायश्चित का यज्ञ है । इसमें इलाके भर में किसी भी आदमी द्वारा हुए कुकर्मों का प्रायश्चित किया जाता है । इसके लिए जौ चारों दिशाओं में फैंके जाते हैं । ग्रामीण अपने ऊपर जौ गिराना अच्छा समझते हैं । बच्चों वाली स्त्रियां अपने बच्चों की जादू टोने से रक्षा हेतु नौड़ से जौ लेती हैं । छिद्र के बाद माताएं अपने बच्चों के लिए मन्त्रपूत जौ ले रही थीं ।

छिद्रा होने पर देवता सहित गूर काहिके के चारों ओर नृत्य कर रहे थे । छिद्र के बाद बारी आई बकरों, भेड़ों और मेमनों की । पहली बलि हुई काहिके के करीब ही । नौड़ भेड़ की गर्दन तथा एक टांग काट ले गया जिसे उसने काहिके के अन्दर रख दिया । फिर धड़ा-धड़ गर्दनें उतरने लगीं । देखते–देखते सात बलियां हो गईं । अन्तिम बलि पर देवता कुछ अड़ गया । काफी समय लगा परन्तु बकरे की मां कब तक खैर मनाती ।

बीच-बीच में दो तीन बार गूर उभरे । खेलती बार उनकी मुद्रा अति गम्भीर होती जा रही थी । आंखों से आंसू निकल रहे थे । जब गूर खेलता सबकी श्रद्धामयी आंखें उस पर जम जातीं ।

इसके बाद बाजा एक विशेष तान में जिसे 'हलकी' कहते हैं, बजने लगा । बाजों गाजों सहित देवता सौह में आ गए । अब शुरू हुआ गूरों का नृत्य जिसे 'लोंहा खेलणा' भी कहा जाता है । सबसे पहले वरिष्ठ गूर ने कटार, संगलों से नाचना आरम्भ किया फिर बारी-बारी से सभी गूरों को नचाने लगा ।

सायं चार बजे के लगभग पुनः देवताओं के रथ सजाये गये । गूर अपनी भेषभूषा में खड़े हो गये । नौड़ काहिके में आ बैठा । अब आरम्भ हुई नौड़वधे की तैयारियां ।

ढालपुर के देवता का गूर नौड़ के ठीक सामने आ खड़ा हुआ । परम्परा यह है कि एक देवता मारता है तो दूसरा जीवन दान देता है । चारों ओर दर्शकों का समूह उमड़ आया था ।

लोगों की भीड़ को जौ का आटा फैंक-फैंक पीछे धकेला जा रहा था। जहां भी लोग आगे घुसने का प्रयत्न करते नौड़ स्त्रियां व अन्य आटे की फुहार छोड़ देते।

दो आदमी नौड़ के पीछे खड़े हो गये उसे कन्धों से थामे। उसका मुंह कपड़े से ढक दिया। पुजारी ने देवता के धनुष से एक लकड़ी का तीर हवा में सामने छोड़ा। दूसरा तीर छोड़ा नौड़ के ऊपर से। बस नौड़ लुढ़क गया। दोनों आदमियों ने उसे थाम लिया। एक ने पीछे से टांगें ऊपर उठा दीं। अब चला पूरा काफिला मन्दिर के चक्कर लगाने। नौड़ को उसी पोजीशन में उठाया हुआ था। उठाने वालों की मुद्रा गम्भीर नहीं थी। अब उसे पुनः काहिके में ला कर जीवन दान देना था।

निचले क्षेत्रों में नौड़ को देवता के स्थान से कुछ आगे ले जा कर तीन बार चरनामृत पिला कर मारा जाता है। उसे लाश की भान्ति ऊपर उठा कर मन्दिर के फेरे लगाये जाते हैं। कहीं-कहीं मन्त्रों द्वारा भी नौड़ मारने की प्रथा है।

वास्तव में काहिका ऐसा नरमेध है जिसमें बलि पुरुष को पुनः जीवन-दान दिया जाता है। यह प्रथा नरमेध परवर्ति बलि प्रथा की परम्परिक अभिव्यक्ति है। कहीं-कहीं इसमें तन्त्रवाद का भी समावेश नजर आता है। कहीं यह अत्यधिक गम्भीर कृत्य है और कहीं नाटक मात्र रह कर मजाक का विषय बन गया है।

ये कहिके प्रायः सभी देवताओं के यहां होते हैं। कहीं हर वर्ष, कहीं तीसरे वर्ष, कहीं पांचवें और कहीं सातवें वर्ष। कई-कई बार वर्षों उपरान्त होते हैं। निश्चित तिथि पर देवता की इच्छा पर और नव-निर्माण के समय काहिके किए जाते हैं।

काहिके को नड़बधा भी कहते हैं। नड़ अथात् 'नौड़ जाति' या नर और इससे बना नरवध या नरमेध।

एक कथा के अनुसार अहल्या पर कुदृष्टि के कारण गौतम ने इन्द्र को शाप दिया जिससे उसका सारा शरीर योनिमय हो गया। शापित इन्द्र ने विष्णु के पास फरियाद की। विष्णु ने सलाह दी कि काहिका करो।

तब इन्द्र ने 'नौड़' को यह कार्य सौंपा। कुल्लू के ऊपरी भाग के कुछ काहिकों जैसे शिरढ़ व भेखली आदि में नौड़ पुरुष व स्त्रियां अश्लील मजाक करते हैं। आमन्त्रित देवताओं के गूरों तथा उपस्थित जन-समुदाय से अपनी शब्द सामर्थ्य तथा कुशलता के अनुसार ऐसे मजाक करते हैं। उक्त कथा के अनुसार जितना अधिक ये मजाक करेंगे उतनी ही इन्द्र की शापित योनिमय देह मुक्त होती जायेगी। ऐसा करने से इन्हें कोई रोक नहीं सकता क्योंकि देवता की इच्छा ही ऐसी है। नौड़ नाराज न हो जाएं इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। अन्य धारणा यह भी है कि ऐसे मजाक से शर्म के मारे भूत-प्रेत आदि नहीं आते। इसी हंसी मजाक के कारण काहिका को 'कहकहा' से भी जोड़ा जाता है।

जिला भाषा अधिकारी,

कुल्लू।

पुस्तक समीक्षा

नाम पुस्तक : वत्सला (मौलक संस्कृत नाटक)
लेखक व प्रकाशक : श्री दुर्गादत्त शास्त्री, ग्राम नेलटी, तहसील देहरा गोपीपुर, जिला कांगड़ा।
मूल्य : बारह रुपये।
पृष्ठ : १३४।

लिखित्वा त्रीणि काव्यानि साम्प्रतं रचितं मया।
रसास्वादा लोकानां 'वत्सला' नाम नाटकम्॥

विद्वान लेखक के मौलिक संस्कृत नाटक 'वत्सला' के प्रारम्भ में उद्घोषित इस पद्य से स्पष्ट है कि तीन काव्य लिखने के पश्चात् 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' की प्रेरणा से गूगा की लोक-कथा पर आधारित छः अंकों में समाप्य यह नाटक भरपूर लोक रसास्वादन के उद्देश्य से लिखा गया है।

रुद्र नमस्कार परक 'नान्दी' से नाटक का प्रारम्भ होने पर, कथा विभिन्न प्रसंगों को पिरोती हुई सपाट चार पीढ़ियों को समेटती 'भरत वाक्यम्' के वाचन पर ही समाप्त होती है। पर्वतीय राजा तुंगभद्र तथा रानी सौदामिनी के घर 'यथा नामस्तथा गुण:' वाली वत्सला व कुत्सला दो कन्याओं ने जन्म लिया। जन्म के समय ही ज्योतिषी ने सारी कथा को ज्योतिष के चमत्कार सिद्ध करने का माध्यम बनाते हुए भविष्यवाणी का रूप देकर पाठकों या दर्शकों को केवल सम्वादों के भरोसे छोड़ दिया शेष नाटक के लिए।

राजा-रानी यौवन प्राप्त पुत्रियों को देख कर 'पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता' के अन्तर्गत चिन्तित पाये गये, शकुन्तला के विषय में कण्व की तरह, आखिर मारवाड़ के एक ही राजवंश में युवराज मीनकेतु तथा अन्य युवक अश्वकेतु के साथ क्रमश: दोनों का विवाह भी हो गया। ज्योतिषी की भविष्यवाणी के अनुसार ही दोनों कन्याओं के साथ प्रयोग होने वाले गुण शब्द में परस्पर विपरीतार्थक सद् तथा दूर् उपसर्ग जुड़ गये थे जिसके फलस्वरूप दानों में वैमनस्य स्वाभाविक था। दोनों के सन्तान न होने पर वत्सला ने सद् को सार्थक करते हुए सन्तान प्राप्ति की इच्छा से बारह वर्षों तक तपस्या की—राजा दशरथ के पुत्रेष्टि महायज्ञ तथा दिलीप सुदक्षिणा के नन्दिनी की सेवा ये प्रेरित जैसी। फलस्वरूप भगवान गोरखनाथ ने वरदान के रूप में फल देने हेतु दूसरे दिन बुलाया, यदि उसी दिन दिये होते तो कुत्सला को कैसे पता चलता जो वत्सला के तप को भंग करने में असफल रही थी। दूसरे दिन वत्सला के भेष में वह पहले ही छल करके फल ले गई। जब वत्सला के आने पर 'भगवान' को पता चला तो कुत्सला के प्रति क्रोध से बोले कि उस दुष्टा के होने वाले दोनों कुपुत्रों का नाश वत्सला के एक सुपुत्र के हाथों होगा। नाटक की प्रधान नायिका की हैसियत से वत्सला ने शाप लौटाने का निवेदन किया लेकिन गोरखनाथ के ऐसा करने पर ज्योतिष झूठा और कथा यहीं इति हो जाती। अब बढ़ चली कहानी, लेकिन भरत मुनि के उर्वशी

को तथा महर्षि गौतम के अहिल्या को दिये गये शाप की याद दिलाते हुए गोरखनाथ के शाप ने दुर्वासा द्वारा शकुन्तला को दिये गये शाप की तरह कथा को चमत्कृत न करते हुए सीधे और स्पष्ट आगे बढ़ने का निर्देश दिया है ।

दोनों गर्भवती हुईं, कुत्सला के व्यवहार से बचाने के लिए मीनकेतु ने वत्सला को मायके भेजा तो वहां ग्यारहवें मास आकाशवाणी हुई कि 'बालक अपने घर पर ही जन्म लेगा'। जिससे विलक्षण सुपुत्र पैदा होने का संकेत मिला यह नाटक में होने वाली पहली आकाशवाणी थी। वर व शाप के अनुसार तीन पुत्र पैदा हुए, नाटक के तीन पात्र बढ़ने पर कुत्सला की मृत्यु से एक स्थान रिक्त हुआ। उसने मरने से पूर्व अपने कुत्सितत्व का प्रायश्चित करते हुए वत्सला को क्षमा याचना भरा पत्र लिख कर अपने नवजात शिशुओं के पालन पोषण का प्रबन्ध भी कर डाला। मीनकेतु की इच्छा के विपरीत ही वात्सल्यपूर्ण वात्सला ने तीनों पुत्रों को समान रूप से पाला पोसा। वड़े होने पर वत्सला पुत्र गगन ने विद्वान व सूरवीर होना तथा कुत्सला पुत्र अर्जुन व सुरजन ने पाण्डुपुत्र व देवताओं पर आधारित नामों को कलंकित करना ही था।

बंगाल से होने वाली गगन की सगाई नया रंग लाई। रास्ते में अर्जुन सुरजन ने ब्राह्मण से टीका छुड़ा लिया। ब्राह्मण पीछे मुड़े तो अन्धा, आगे बढ़े तो ठीक, फिर भी समझ न आई। आखिर एक और आकाशवाणी हुई मारवाड़ जाने के निर्देश सहित। केवल गगन की इस सगाई में कुत्सला पुत्रों के कुत्सित्व को साबित करने के उद्देश्य से वत्सला के वात्सल्य की 'इत्सज्ञा' से जहां प्रधान नायिका के बढ़ते चरित्र को रोक मिली है वहाँ कुत्सला पुत्रों के कुत्सित्व को आधार भी।

कथा फिर आगे बढ़ी तीसरी पीढ़ी के कर्त्तव्य तथा चौथी के सूत्रपात की ओर योगदा के साथ ससुराल गये गगन को क्रुद्ध हुए कुत्सला पुत्रों के द्वारा पठानों के सहयोग से देशद्रोह के षडयन्त्र रचने पर गौण बने मीनकेतु ने तुरन्त वापिस बुला लिया। राष्ट्रद्रोहियों से युद्ध हुआ, अर्जुन-सुरजन मारे गए। गगन की बहादुरी पर मीनकेतु ने आशीर्वाद दिया लेकिन प्रधान नायिका वत्सला का वात्सल्य पुनः जागा, प्यारे गगन को वीरता का पुरस्कार मिला—वही बारह वर्ष का वनवास। सीता की तरह योगदा भी तैयार हुई, गगन ने न रोका होता तो एक और रामायण होती। फिर भी वह चण्डी के मन्दिर में रहने लगी। जंगल में तपस्यारत गगन भूमि में विलीन होकर देवत्व को प्राप्त हो गया। भले ही दीवाली की संभावना टल गई लेकिन इधर चण्डी के मन्दिर में योगदा ने भरत सदृश पुत्र को जन्म दिया, पढ़ा, बड़ा हुआ। गगन के विलीन होने का समाचार सुनकर योगदा पुत्र चन्द्रकेतु का राजतिलक हुआ। मीनकेतु तथा वत्सला की प्रतीक्षा करता 'वानप्रस्थ' पहले ही 'बार्धक्ये मुनिवृतीनाम्' का पालन करने के लिए तत्पर पाया गया। 'भरतवाक्यम्' के साथ कथा सीधी जा मिली।

इस प्रकार इस नाटक में रामायणीय संस्कृति तथा पौराणिक घटनाओं के अनेक प्रसंगों के पर्यायों को संयोजित किया गया है। इस पारम्परिक अनुगूंज के अतिरिक्त कन्या विवाह, दहेज प्रथा, पुत्र-पुत्री अभेद तथा परिवार नियोजन जैसे सामयिक विषयों के प्रति भी जागरुकता दिखायी है। अनेक शिक्षाओं को पाठकों तक पहुंचाया है तथा ज्योतिष कर्मकाण्ड आदि शास्त्र सम्मत ज्ञान को भी प्रकाश में लाया है।

नाटक के संवाद चुस्त बन पड़े हैं। वत्सला–सोमसी, कुत्सला–अश्वकेतु आदि प्रशंसनीय संवादों के साथ विदुषक की बेलगाम जीभ भी कम मनोरंजक नहीं। भाषा प्रायः सरल एवं सरस है फिर भी कुछ समस्त पदों एवं कम प्रचलित शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिन पर पृष्ठ में नीचे दी गई व्याकरण व निरुक्त सम्बन्धी टिप्पणियां विद्यार्थियों व नव सिखुओं के लिएउपयोगी हैं। चरित्रों को उभारने का प्रयास रहा है जो चरित्रों की अधिकता तथा कथा प्रसंग के विस्तार के कारण परिपूर्ण नहीं हो पाए, विशेष रूप से प्रधान नायिका वत्सला का चरित्र विरोधों में पड़ गया है।

लोक-धुनों तथा शास्त्रीय गायन दोनों में गेय गीतों का संयोजन विशेष प्रशंसनीय प्रयास तथा एक नई प्रस्तुती भी है। लेकिन बहुत बार बिना प्रसंग ही गीत भरने के उद्देश्य से नर्तकी के पांव थिरकाए जाते लगते हैं। इन गीतों के विस्तार आदि में कुछ संशोधन के पश्चात् नाटक मंचन योग्य है इसमें संशय नहीं। 'शार्दुलवी क्रीड़ितम्, शिखरिणि व मन्दाक्रान्ता' आदि सुन्दर छन्दों के प्रयोग के साथ युद्ध के समय 'पंचचामरम्' अर्थात् परेड छन्द प्रयुक्त करना लेखक के औचित्य विवेक का परिचायक है।

कुल मिलाकर इस नाटक में पारम्परिक नाटकीय नियमों का पालन करते हुए प्रस्तावनादि अनेक स्थलों पर पूर्व ग्रन्थों की अनुगूंज मिलती है। संस्कृत के मौलिक नाटकों में स्थान रखने वाली इस रचना को हिमाचल के संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में एक उपलब्धि कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी, इसके लिए विद्वान लेखक को बधाई देनी होगी।

सरल तथा संवादात्मक भाषा ही संस्कृत के प्रचार प्रसार में उपयोगी सिद्ध हो सकती है। कथा वस्तु को भी यदि 'एक था राजा एक थी रानी' वाली प्रथा से हट कर सामयिकता के परिप्रेक्ष्य में गढ़ा जाए तो यह संस्कृत साहित्य के प्रति अधिक पाठकों को आकृष्ट करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

पुस्तक का मुद्रण व अन्य साज सज्जा अच्छी है। सामने दिए गए हिन्दी रूपान्तरण से कम संस्कृत पढ़े पाठकों को भरपूर सहायता मिलती है।

समीक्षक : तुलसीराम 'रमण'
संस्कृत संयोजक
भाषा एवं संस्कृति विभाग
हिमाचल प्रदेश, शिमला–१७१००२

किताब का नाम : तरतीब
मरत्तबैन : लालचन्द प्रार्थी चान्द कुलवी, कृष्ण कुमार 'तूर'
नाशर : हिमाचल अकादमी ऑफ आर्टस कल्चर एण्ड लैंगवेजिज, शिमला
सुफ़ात : १३६
कीमत : १५/- रुपये

तरतीब हिमाचल प्रदेश के इक्कीस उर्दू शोअरा की ग़ज़लियात का एक नुमायन्दा इन्तखाब है जिसे हिमाचल अकादमी ऑफ आर्टस कल्चर लैंगवेजिज ने नफ़ासत और अहतमाम से शाया किया है। अकादमी इससे क़बल रियासत के हिन्दी, संस्कृत और पहाड़ी ज़ुबान के शायरों के कलाम के इन्तखाबात शाया कर चुकी है। उर्दू शोअरा के इस इन्तखाब की इशाअत से न सिर्फ इस सिलसिले की तकमील हुई है बल्कि उर्दू की अहमीयत और मक़बूलियत का एतराफ भी, जैसा कि पेशलफ़्ज में वज़ीरे तालीम और अकादमी के सदर ने लिखा है, चाहे हिमाचल प्रदेश में उर्दू जानने वाले बहुत कम हैं लेकिन यह वाक्य है कि अब भी वहां उर्दू के बहुत कामयाब मुशायरे होते रहते हैं।

इस किताब के मुताला से यह बात वाज़ेह हो जाती है कि हिमाचल में उर्दू के हर मुकतबये ख्याल के शायर अच्छी ग़ज़ल कह रहे हैं। इनमें रवायत की साल्हे व सेहतमन्द क़दरों के निगाहदार भी हैं, तौसीह रवायत के शैदा भी और ग़ज़ल के नये रुझानात के अलम्बरदार भी, इन ग़ज़लों में जहां रवायत की पासदारी है वहां रवायतज़दा फसुर्दगी से शाऊरी तौर पर एहतज़ाज भी है और जहां ज़दीद, रुझानात व तफ़क़करात की अकासी है वहां ग़ैर ज़रूरी अल्हाम के धुंधलके भी नहीं हैं और तरसील का अलमीया कहीं भी दरपेश नहीं आता जो शोअरा ग़ज़ल की रवायत को अपनाए हुए हैं उन्होंने इनफ़रादी मुसाबात और तजुरबात को भी ग़ज़ल की ज़ूबान में खूबी और खूबसूरती से ब्यान किया है। चन्द शोअरा पर असातज़ा के असरात की परछाईयां मिलती हैं। मगर उन्होंने भी ग़ज़ल के रवायती फरहंग को ऐसे इस्तेमाल किया है कि लफ़्ज़यात के धुन्धल के में तखलीकी तर्जुबों से नई उमंग पैदा हो गई है।

जिन शोअरा ने ग़ज़ल के नये रुझानात को अपनाया है उन्होंने आज के इन्सान के शुब्हात, करब, बेयकीनी, हरास, महरूमी और तन्हाई का फ़नकाराना रख-रखाव के साथ बहुत मुअस्सर इज़हार किया है। हर शायर का नुमायंदा कलाम शामिल किया गया है इसलिए मय्यार की नाहमवारी का एहसास नहीं होता, बल्कि यह महसूस होता है कि हर मकतब-ए-ख्याल की अच्छी शायरी क़ारीन के दिल पर अपना मखसूस तासुर छोड़ सकती है। इस तरह मौज़ूआती और उसलूबी बरक़रार रही है। यकसानीयत का अहसास भी नहीं होता और किताब-ब-यकवक्त ग़ज़ल के मिज़ाज का एक हफ्तरंग *Spectrum* भी पेश करती है।

अशार अच्छे, मतवस्त और बहुत अच्छे हैं लेकिन शायद ही कोई ऐसा शेयर है जिसे हल्का कहा जा सके :

—अब तो रुकना ही पड़ेगा मुझे इस दुनियां में,
तूने बादीद-ए-तर वक्ते-ए-सफर देख लिया।

—आज बहुत एहसास था मेरे सूनेपन का तन्हाई को,
मुझ से गले लिपट कर पहरों आज बहुत रोई तन्हाई।

—अरे ओ सैरो-ओ-सफ़र के रसिया,
हवश का जंगल बहुत घना है,
कोई अजीयत शियार साया,
बदन से तेरे लिपट न जाए।

—जिसके पीछे हैं रंगों-ओ-बू-का हुजूम,
उस दरीचे को वा करे कोई।

—क्यों ढांपती हैं वक्त की परछाईयां मुझे,
मैं आने वाले दौर का मुल्हम क़यास-हूं।

—आते ही चल दिया वो बुत-ए-फितनागर,
अब कहूं क्या ? के वो आ गया, या गया।

—छुपे हैं मेरे दिल में लाखों ही सूरज,
मगर फिर भी रौशनी ढूंडता हूं।

—जिस्म की कैद तोड़ने वाले,
और इक ऐसा दायरा होगा।

— तमाम रात जो रोया बग़ैर अश्कों के,
वो ए शख्स कई पानियों से गहरा था।

—अभी कुछ देर पहले तक हवा थी,
मेरी मुट्ठी में अब कुछ भी नहीं।

—पानियों की सदाएं कौन सुने,
प्यास का जिस्म तो हुबाब सा है।

—मिट कर भी खामोश नहीं था क्योंकर उससे बचते हम,
काफी सोच समझ कर हमने इस गुम्बद को ढाया है।

—कट कर जमीं से मैं ही नहीं हूं खला में गुम,
ये मेहर सर गिरां भी तौहीदे शिकस्त है।

मरत्तबैन चूं के खुद ग़ज़ल की रवायात और उसके फ़िक्री ब-फ़न्नी रुझानात व इम्कानात से खूब वाकिफ़ हैं इसलिए ग़ज़लों के इन्तखाब में उन्होंने सुराग ब सबील के जिस मय्यार को सामने रखा है उसने इस इन्तखाब को मुसतनिद व मोहतबिर बना दिया है।

समीक्षक : आज़ाद गुलाटी

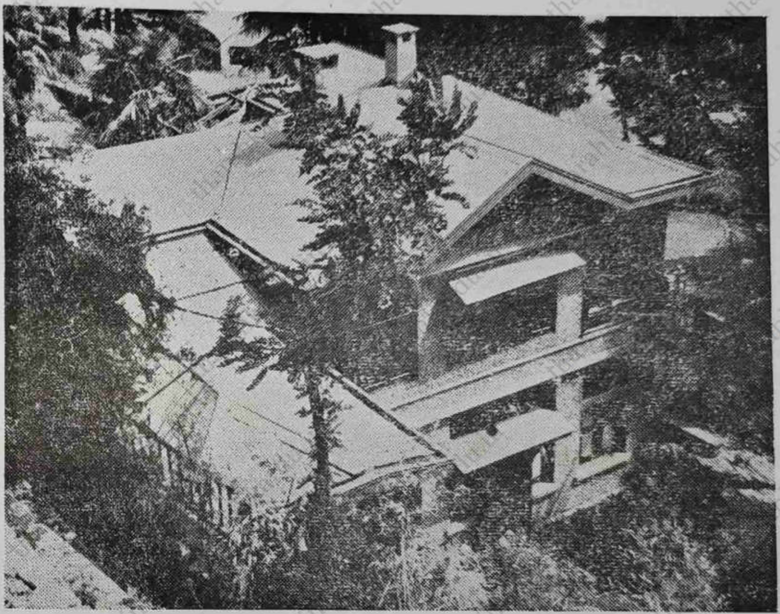

अमृता शेरगिल का स्टुडियो, समरहिल-शिमला,

1. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि०प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच (8)-6(3)1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

2. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, पीच ब्लाज़म काटेज़ शिमला-2 द्वारा प्रसारित तथा 'नवीन प्रिंटिंग प्रैस', जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश) द्वारा मुद्रित।